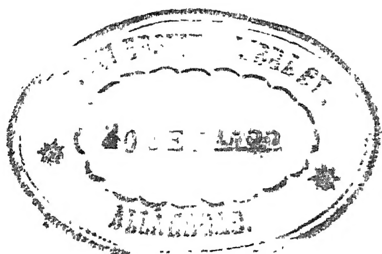
विनिमय-सिद्धान्त



लेखक

प्रोफ़ेसर जे० के० मेहता

अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, प्रयाग विश्वविद्यालय

अनुवादक

श्री प्रेम चन्द जैन, एम० ए०

प्रीमियर पब्लिशिंग कम्पनी

फव्वारा — दिल्ली

प्रकाशक:
गौरीशंकर शर्मा, मैनेजर,
प्रीमियर पब्लिशिंग कम्पनी
फव्वारा, दिल्ली।



मूल्य :
डेढ़ रुपया

मुद्रक:
ऑक्सफोर्ड एण्ड कैम्ब्रिज प्रेस,
उर्दू बाज़ार, दिल्ली।

प्रस्तावना

बी० ए० के विद्यार्थिओं को मूल्य सिद्धान्त अर्थशास्त्र के सब सिद्धान्तों में अधिक कठिन और जटिल प्रतीत होता है। बहुधा साधारण पुस्तकें उन्हें विनिमय और वितरण सिद्धान्तों और उनकी समस्याओं का ठीक ज्ञान कराने में असफल रहती हैं। उसके लिए विद्यार्थियों को कक्षा के वक्तव्यों और शिक्षकों से वाद-विवाद पर निर्भर रहना पड़ता है। परन्तु कक्षा के कमरे के बाहर ऐसी पुस्तक की आवश्यकता होती है जो उन्हें केवल मूल्य सिद्धान्त को स्पष्ट ही नहीं करे किन्तु अनेक समस्याओं और उनके पारस्परिक सम्बन्ध समझने में भी सहायता करे। शिक्षक के नाते मैंने यह देखा है कि जब विद्यार्थिओं के सम्मुख बुद्धिपूर्ण प्रश्न रक्खे जाते हैं और उन्हें इन प्रश्नों पर विचार करने का अवसर दिया जाता है तो उनको सिद्धान्त एवं समस्या में बहुत सहायता मिलती है। प्रश्नों को याद करने और उनको समझने में अन्तर है। जब विद्यार्थी से एक सिद्धान्त अथवा समस्या पर सब प्रकार से अनेक प्रश्न किये जाते हैं तो वह आप से आप समझ जाता है। इसी ध्येय को ध्यान में रखते हुए मैंने इस पुस्तक में पूर्ण विनिमय सिद्धान्त को सब प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देकर समझाने का प्रयत्न किया है।

विद्यार्थिओं को मूल्य सिद्धान्त का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कराने के हेतु अल्प और दीर्घकाल मूल्य, साम्य और बाज़ार मूल्य, मूल्य पर लागत और उपयोगिता के प्रभाव से सम्बन्धित अनेक प्रश्न दिये गये हैं। इस प्रकार विद्यार्थिओं को मूल्य सिद्धान्त का सब दृष्टिकोणों से ज्ञान कराया गया है। मैंने इस पुस्तक में केवल विनिमय सिद्धान्त को स्पष्ट किया है। वितरण दूसरी पुस्तक के लिए छोड़ दिया गया है।

इलाहाबाद
फरवरी, १९५४

—जे० के० मेहता

विषय-सूची

पृष्ठ सं०

प्रकरण १. विनिमय परिचय १–

१—अर्थशास्त्र में विनिमय-सिद्धान्त का क्या स्थान है? वितरण और उत्पादन से इसके सम्बन्ध का वर्णन करो।

२—विनिमय, वस्तु-विनिमय और वस्तु क्रय-विक्रय से क्या समझते हो?

३—वस्तु-विनिमय के लिए किन-किन दशाओं का होना आवश्यक है? साधारण रूप में इसके लाभों की व्याख्या करो।

४—आजकल की आर्थिक दशा में देश अथवा विश्व की समृद्धि, उत्पादन या विनिमय किस पर अधिक निर्भर है?

प्रकरण २. वस्तु-विनिमय और विनिमय अनुपात

५—वस्तु-विनिमय की परिभाषा करो; और यह स्पष्ट करो कि सब आर्थिक व्यवहार वस्तु-विनिमय क्यों हैं?

६—वस्तु-विनिमय किन दशाओं में सम्भव है? यह कब रुक जाता है?

७—यदि अ के पास सेब और ब के पास सन्तरे हैं तो सिद्ध करो कि विनिमय तभी प्रारम्भ होगा जब

$$\frac{\text{अ को सन्तरों की प्रारम्भिक उपयोगिता}}{\text{अ को सेब की सीमान्त उपयोगिता}}$$

$$\frac{\text{ब को सन्तरे की सीमान्त उपयोगिता}}{\text{ब को सेब की प्रारम्भिक उपयोगिता}}$$ से अधिक होती है।

८—निम्न तालिका में अ और ब की गेहूँ और चावल की

सीमान्त उपयोगिताएँ दी गई हैं। यदि एक सेर गेहूँ एक सेर चावल से बदला जाता है तो विनिमय किस समय तक होता रहेगा और दोनों को कितना उपयोगिता लाभ होगा ? उदाहरण में अ के पास चावल और ब के पास गेहूँ है।

अ की सीमान्त उपयोगिताएँ		ब की सीमान्त उपयोगिताएँ	
चावल	गेहूँ	चावल	गेहूँ
१००	८०	९५	१५०
९०	७०	८५	१३०
८०	६०	७५	११०
७०	५०	६५	९०
६०	३०	५५	७०
५०	१०	३६	५०

९—उदासीनतासूचक रेखा और सौदा रेखा अथवा मोल-भाव रेखा का क्या अर्थ है ?

१०—सिद्ध करो कि वस्तु-विनिमय में अन्तिम रूप से विनिमय अनुपात और दो वस्तुओं का सीमान्त उपयोगिता अनुपात बराबर होता है।

प्रकरण ३. बाज़ार और मूल्य का महत्त्व १५—

११—बाज़ार की परिभाषा करो। अर्थशास्त्र के अनुसार बाज़ार की क्या विशेषताएँ होनी चाहिएँ ?

१२—निम्नलिखित का अर्थ स्पष्ट करो :—

(अ) बड़ा बाज़ार (ब) विस्तृत बाज़ार (स) स्थिर बाज़ार और (द) स्थानीय बाज़ार।

१३—किसी वस्तु का बाज़ार बड़ा होने के लिए किन-किन दशाओं की आवश्यकता होती है ? बड़े बाज़ार से क्या हानि-लाभ हैं ?

पृष्ठ संख्या

१४—पूर्ति का अर्थशास्त्र में क्या अर्थ है? माँग के प्रसंग में स्पष्ट करो। २०

१५—अल्प-कालीन और दीर्घ-कालीन पूर्ति किन दशाओं पर निर्भर होती है? २१

१६—किसी वस्तु के स्टाक और पूर्ति में क्या अन्तर है? दोनों में क्या पारस्परिक सम्बन्ध है? २२

१७—मूल्य का क्या अर्थ है? द्रव्य-मूल्य से इसका क्या सम्बन्ध है? २३

१८—मूल्य उपयोगिता, न्यूनता, या दोनों पर निर्भर होता है। २४

१९—स्पष्ट करो कि मूल्य सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त उत्पादन लागत दोनों के बराबर होता है। २६

२०—सिद्ध करो कि पुनरुत्पादन-योग्य और पुनरुत्पादन-अयोग्य वस्तुओं का द्रव्य-मूल्य भिन्न दशाओं द्वारा निर्धारित होता है। २८

२१—विनिमय-रहित आर्थिक व्यवस्था में मूल्य सिद्धान्त का क्या महत्त्व होगा? २९

२२—मूल्य के भिन्न सिद्धान्तों को स्पष्ट करो। २९

प्रकरण ४. द्रव्य-मूल्य का निर्धारण ३२—६०

२३—वास्तविक उत्पादन लागत, द्रव्य लागत और उत्पादन व्यय से क्या समझते हो? विनिमय सिद्धान्त के अध्ययन में इन तीनों में किसका महत्त्व सबसे अधिक है? ३२

२४—सीमान्त उत्पादन लागत का क्या अर्थ है? सीमान्त और असीमान्त फर्म के प्रसंग में इसका स्पष्टीकरण करो। ३३

२५—प्रोफ़ेसर मार्शल की प्रतिनिधि फ़र्म क्या है? प्रतिनिधि फ़र्म की उत्पादन लागत का सामान्य मूल्य के निर्धारण में क्या स्थान है? ३५

२६—उद्योग अथवा फ़र्म के पूर्ति मूल्य का क्या अर्थ है? उत्पादन लागत से इसका कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं?

२७—यदि पूर्ति बढ़ाना सम्भव नहीं हो तो बाज़ार भाव किस प्रकार निश्चित हो?

२८—बाज़ार मूल्य क्या है? सामान्य मूल्य और बाज़ार मूल्य में क्या अन्तर है?

२९—आप अल्प-कालीन और दीर्घ-कालीन सामान्य मूल्य से क्या समझते हो? इनका निर्धारण किस प्रकार होता है?

३०—स्पष्ट करो कि दीर्घ-काल में और अल्प-काल में वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण किस प्रकार होता है?

३१—सिद्ध करो कि बाज़ार में स्पर्द्धा की स्थिति में वस्तु का सामान्य मूल्य माँग और पूर्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया अर्थात् सीमान्त लागत और सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है।

३२—"अल्प-काल में मूल्य निर्धारण में सीमान्त उपयोगिता का और दीर्घ-काल में सीमान्त लागत का प्रमुख स्थान रहता है।" मार्शल के इस कथन पर विचार करो।

३३—'दीर्घ-काल में मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है' और 'मूल्य माँग और पूर्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया से निर्धारित होता है'। इन दो कथनों में कुछ मतभेद है अथवा नहीं?

३४—यह सिद्ध करो कि वस्तु का मूल्य सीमान्त लागत द्वारा निर्धारित होता है किन्तु यह औसत लागत के बराबर भी होता है।

३५—'स्पर्द्धा की स्थिति में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम ही लागू होता है'। इस कथन को स्पष्ट करो।

पृष्ठ संख्या

३६—पूर्ति की लोच क्या है? यह किन दशाओं पर निर्भर होती है? ५१
३७—अल्प-काल और दीर्घ-काल में विदेशों से अचानक पूर्ति बढ़ जाने, लागत घटाने वाले आविष्कारों और वस्तु के नये उपयोगों से मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? ५४
३८—प्रमुख-लागत और पूरक लागत का क्या अर्थ है? अल्प-काल में किसकी अधिक महत्ता होती है? ५६
३९—उत्पादन लागत में कौन-कौन से तत्त्व सम्मिलित रहते हैं? वास्तविक आर्थिक लाभ लागत का अंश है अथवा नहीं? ५७
४०—संयुक्त माँग और संयुक्त पूर्ति एवं संग्रथित माँग और संग्रथित पूर्ति का क्या अर्थ है? स्पष्ट करो कि मूल्य परिवर्तन का संयुक्त माँग और संयुक्त पूर्ति के मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है? ५९

प्रकरण ५. एकाधिकार मूल्य सिद्धान्त ६१—७७

४१—एकाधिकार क्या है और इसके क्या विशेष गुण हैं? ६१
४२—स्पष्ट करो कि एकाधिकार और सहकारिता दोनों ही स्पर्द्धा-विरोधी होते हुए भी एक समान नहीं हैं। ६१
४३—एकाधिकार कितने प्रकार का होता है? सामाजिक दृष्टि से किस प्रकार का एकाधिकार सबसे कम हानिकारक है? ६२
४४—एकाधिकार मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है? एकाधिकार और स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य निर्धारण करने वाले तत्त्वों में क्या अन्तर है और क्यों? ६३
४५—सीमान्त आय क्या है? मूल्य निर्धारण में इसका क्या महत्त्व है? ६५
४६—विवेचनात्मक एकाधिकार क्या है? विवेचनात्मक मूल्य वसूल करने के लिए क्या उपाय काम में लाये जाते हैं? ६७
४७—क्या विवेचनात्मक एकाधिकार की स्थिति में मूल्य साधारण

एकाधिकार की स्थिति से भिन्न तत्त्वों द्वारा निर्धारित होता है ? मूल्य विवेचन में एकाधिकारी का क्या ध्येय होता है ?

४८—स्पष्ट करो कि एकाधिकारी की शक्तियों पर क्या-क्या रोक होती हैं ?

४९—किन परिस्थितियों में एकाधिकार मूल्य स्पर्द्धा मूल्य से बहुत अधिक भिन्न होता है ?

५०—'उपभोक्ताओं को एकाधिकार की स्थिति में कम हानि होती है और स्पर्द्धा की स्थिति में अधिक'। इस कथन पर विचार करो।

५१—सट्टा क्या है ? यह कितने प्रकार का होता है ? इसकी आर्थिक लाभ-हानियाँ क्या हैं ?

प्रकरण ६. अपूर्ण स्पर्द्धा

५२—अपूर्ण स्पर्द्धा क्या है ? इसमें पूर्ण स्पर्द्धा से क्या अन्तर है ?

५३—अपूर्ण स्पर्द्धा के क्या कारण हैं ? इन कारणों को दृष्टि में रखते हुए बाज़ार-मूल्य पूर्ण स्पर्द्धा का मूल्य होता है अथवा अपूर्ण स्पर्द्धा का ?

५४—संक्षेप में स्वतन्त्र स्पर्द्धा, पूर्ण स्पर्द्धा और शुद्ध स्पर्द्धा का अन्तर बतलाओ।

५५—अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता है ? पूर्ण स्पर्द्धा के मूल्य निर्धारण से इसमें क्या अन्तर है ?

५६—क्या एक ही मूल्य सिद्धान्त पूर्ण-स्पर्द्धा, अपूर्ण-स्पर्द्धा और एकाधिकार की स्थिति में लागू हो सकता है ?

५७—क्या अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में फ़र्म अनुकूलतम आकार प्राप्त कर सकती है ?

५८—ग्राहकों में अपूर्ण स्पर्द्धा क्या है ? इसका मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

५९—द्वयाधिकार, सीमिताधिकार, ग्राहकों का एकाधिकार और ग्राहकों के द्वयाधिकार का संक्षिप्त विवरण करो।

प्रकरण १

विनिमय—परिचय

प्रश्न १—अर्थशास्त्र में विनिमय-सिद्धान्त का क्या स्थान है? वितरण और उत्पादन से इसके सम्बन्ध का वर्णन करो।

उत्तर—कुछ अर्थशास्त्रियों का विचार है कि अर्थशास्त्र मूल्य-विज्ञान है। इसी से अर्थशास्त्र में विनिमय-सिद्धान्त की महत्ता का अनुभव होता है क्योंकि मूल्य सदैव विनिमयता पर निर्भर है। अतः विनिमय सिद्धान्त का अर्थशास्त्र के अध्ययन में प्रमुख स्थान है।

मार्शल के कथनानुसार अर्थशास्त्र मनुष्य-जीवन की क्रियाओं का अध्ययन है; और आज के युग में साधारण अथवा असाधारण क्रियाएँ विनिमय शृंखला पर निर्भर हैं। आज शायद ही कोई व्यक्ति आत्मनिर्भर हो। श्रम-विभाजन तो पुरातन काल में भी किसी न किसी रूप में रहा ही होगा परन्तु आज तो इसका महत्त्व और भी अधिक है। द्रव्य का प्रयोग पुराने समय में भी सीमित रूप से होता था, परन्तु आज तो यह सभी वस्तुओं से अधिक प्रयोग में आता है। इन्हीं प्रवृत्तियों ने वस्तु-विनिमय आवश्यक एवं सुलभ बना दिया है। आज हमारी अधिकतर क्रियाएँ विनिमय क्रियाएँ हैं।

अर्थशास्त्र के ऐसे महत्त्व के विभाग का इस विज्ञान के दूसरे विभागों से घनिष्ठ सम्बन्ध होना अनिवार्य ही है। उत्पादन भिन्न प्रकार की उपयोगिता निर्माण का अध्ययन करता है और उपयोगिता निर्माण में हमें निरन्तर वस्तुओं का एक-दूसरे से विनिमय करना पड़ता है। समयानुसार और स्थानानुसार उपयोगिताएँ विनिमय सम्भव होने पर ही निर्भर हैं। उत्पादन क्रियाओं में सब ही माध्यमिक वस्तुओं का विनिमय करना पड़ता है। वास्तव में उत्पादन क्रिया तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक अन्तिम रूप से उत्पादित

वस्तु द्रव्य में परिणत न हो जाये। उत्पादन-कुशलता का निर्णय टैकनिकल दशाओं से करना सम्भव है किन्तु इसकी उपयोगिता एवं आवश्यकता उत्पादित वस्तु के विनिमय पर ही निर्भर है।

वितरण तो विनिमय का दूसरा नाम ही है। हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से वस्तुओं को द्रव्य की सहायता से बदला करते हैं। परन्तु हम उत्पादित सम्पत्ति उत्पादन के भिन्न साधकों में उनकी सेवाएँ द्रव्य में बदल कर बाँटते हैं। इस प्रकार वितरण सेवाओं का द्रव्य से विनिमय है और इसीलिए विनिमय के साधारण सिद्धान्त से मिलता है। वितरण-प्रणाली की क्रियाशीलता और कार्यकुशलता विनिमय सिद्धान्त की सच्चाई और व्यवहार में ठीक रूप से कार्य करने पर निर्भर है।

उत्पादन और वितरण विनिमय पर निर्भर हैं। देशवासियों का कल्याण उत्पादन की कार्यकुशलता से अधिक विनिमय की कार्यकुशलता पर निर्भर है।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि अर्थशास्त्र मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन करता है। आज हमारी अधिकतर क्रियाएँ वस्तु-विनिमय से सम्बन्धित हैं; अतः अर्थशास्त्र विज्ञान विशेषतः विनिमय से ही सम्बन्धित है। उत्पादन विनिमय का ताँता समझा जा सकता है और वितरण उत्पादित मूल्य का सेवा-विनिमय। उत्पादन और वितरण दोनों ही की कार्यक्षमता विनिमय के ढाँचे पर निर्भर है।

प्रश्न २—विनिमय, वस्तु-विनिमय और वस्तु क्रय-विक्रय से क्या समझते हो?

उत्तर—*विनिमय*—जब एक वस्तु दूसरी वस्तु के बदले में इच्छा और स्वाधीनता से दी जाती है तो लेन-देन विनिमय कहलाता है। वस्तुओं या सेवाओं को दूसरी वस्तुओं, सेवाओं या द्रव्य से बदलने को विनिमय कहते हैं

वस्तु-विनिमय—जब बिना द्रव्य की सहायता से एक वस्तु दूसरी वस्तु से बदली जाती है तो यह वस्तु-विनिमय कहलाता है। वस्तु, वस्तु अथवा सेवा से बदली जाती है और इसमें द्रव्य का कोई स्थान नहीं होता।

वस्तु क्रय-विक्रय—वस्तुओं का द्रव्य से बदलना विक्रय और द्रव्य का वस्तु से बदलना क्रय कहलाता है। इस प्रकार वस्तुएँ और सेवाएँ दोनों ही खरीदी और बेची जा सकती हैं।

ऊपर की परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि विनिमय विशाल वस्तु है। वस्तु-विनिमय और क्रय-विक्रय इसके दो भेद हैं। वस्तु-विनिमय में द्रव्य की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु क्रय-विक्रय में विनिमय माध्यम के रूप में द्रव्य का होना अति आवश्यक है।

आज की अर्थ-व्यवस्था में तो क्रय-विक्रय का सबसे महत्त्व का स्थान है क्योंकि आज के युग में विनिमय के बहुत से माध्यम प्रयोग में लाये जाते हैं। पुराने समय में वस्तु-विनिमय विनिमय का सबसे अधिक प्रचलित साधन था। परन्तु आज भी विश्व के पिछड़े हुए एवं अशिक्षित भागों में इसी के द्वारा मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं।

प्रश्न ३—वस्तु-विनिमय के लिए किन-किन दशाओं का होना आवश्यक है ? साधारण रूप में इसके लाभों की व्याख्या करो।

उत्तर—वस्तु-विनिमय के लिए प्रमुख आवश्यकता यह है कि वस्तु अथवा सेवा का आधिपत्य हस्तान्तरित किया जा सके। अतः विनिमय वस्तु ऐसी होनी चाहिए कि उसका आधिपत्य एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति को दिया जा सके। परन्तु यहाँ कुछ प्रश्न उत्पन्न हो जाते हैं। क्या मनुष्य के गुण अथवा उसके शरीरांग हस्तान्तरित किये जा सकते हैं अथवा नहीं ? अर्थशास्त्र के सही अर्थों में यह दलील दी जा सकती है कि यह इतने ही हस्तान्तरण योग्य हैं जितनी कि मनुष्य के शरीर से अलग की वस्तुएँ। यदि हस्तान्तरिता को इस प्रकार नहीं समझा जाता तो यह कहा जा सकता है कि विनिमयता की पहली आवश्यक शर्त यह है कि वस्तु मनुष्य शरीर से अलग हो।

इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि विनिमय की वस्तु उपयोगी हो और उसकी कमी हो। कभी भी अनुपयोगी एवं स्वाधीनता से मिलने वाली वस्तुएँ विनिमय द्वारा प्राप्त नहीं की जातीं। यहाँ उपयोगिता से हमारा अर्थ व्यक्ति विशेष के लिए उपयोगिता है। यदि अ और ब वस्तु बदल रहे हैं तो

अ की वस्तु ब के लिए और ब की वस्तु अ के लिए उपयोगी होनी चाहिए। कमी अथवा न्यूनता का अर्थ है कि वस्तु को प्राप्त करने लिए कुछ प्रयत्न करना पड़े।

विनिमय दो व्यक्तियों में लेन-देन है और इसीलिए उनके मध्य यह उसी समय तक हो सकता है जब तक दोनों व्यक्तियों को उपयोगिता लाभ हो। कभी-कभी ऐसा होता है कि एक सीमा के बाद विनिमय से एक व्यक्ति को तो लाभ होता रहता है परन्तु दूसरे व्यक्ति को लाभ होना रुक जाता है; ऐसी दशा में विनिमय सम्भव नहीं है।

साधारण शब्दों में विनिमय करने वाले व्यक्तियों को उपयोगिता की वृद्धि अथवा उपयोगिता लाभ ही विनिमय का लाभ है। यदि किसी व्यक्ति के पास कोई वस्तु प्रचुरता में है या वह किसी वस्तु का अपनी आवश्यकता से अधिक उत्पादन कर सकता है तो वह विनिमय द्वारा इस अधिक मात्रा को लाभ के साथ दूसरे व्यक्तियों से दूसरी वस्तुओं में बदल सकता है। अधिक सही शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह वस्तुएँ जो किसी कारणवश व्यक्ति-विशेष को कम उपयोगी हैं, अधिक उपयोगी वस्तुओं से बदली जा सकती हैं।

विनिमय व्यक्तियों एवं भूमि के विशेष गुणों का पूर्ण आर्थिक उपयोग करने में महान् सहायक है। जुलाहा अपनी पूर्ण शक्ति बुनने में लगाता है और कुम्हार दिन भर बर्त्तन बनाता है; और तब विनिमय की सहायता से दोनों अपने कपड़े और बर्त्तन की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं। यदि विनिमय सम्भव न हो तो जुलाहे को अपना कुछ समय बर्त्तन बनाने में लगाना पड़े जिसमें वह निपुण नहीं है। इसी प्रकार आज देश के भिन्न २ भागों में भिन्न २ फसलें उत्पन्न की जाती हैं और पैदावार एक-दूसरे से बदल ली जाती है। इस प्रकार की व्यवस्था से देश के भिन्न २ भाग भिन्न २ फसलों के उत्पादन में निपुण हो गये हैं; परन्तु यदि विनिमय न हो सके तो यह भ सम्भव नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि विनिमय द्वारा मनुष्य अपनी सुविधाओं और शक्तियों का पूर्ण उपयोग कर सकता है। इसी के कारण विशेषीकरण

सम्भव है, व्यापार से लाभ है, बड़े पैमाने पर उत्पादन किया जा सकता है और इसी पर देश की सम्पन्नता एवं धन की समता निर्भर है।

प्रश्न ४—आजकल की आर्थिक दशा में देश अथवा विश्व की समृद्धि उत्पादन या विनिमय किस पर अधिक निर्भर है ?

उत्तर.—पुरातन काल में देश की समृद्धि विनिमय से कहीं अधिक उत्पादन पर निर्भर रही होगी। उस समय उत्पादन का प्रारम्भ था। उत्पादन करने के ढँग आज की तरह विज्ञान की सहायता नहीं लेते थे ; वस्तु-विनिमय सुलभ था। परन्तु आज दशाएँ बिलकुल भिन्न हैं। अब उत्पादन ने इतना विकास कर लिया है कि मनुष्य की सब आवश्यकताएँ आसानी से सन्तुष्ट की जा सकती हैं। आज के युग में उत्पादन की कमी के स्थान पर उत्पादन की अत्यधिकता है। परन्तु विनिमय इतना जटिल हो गया है कि उसका ठीक प्रकार नियंत्रण करना कठिन है। इस जटिलता के बहुत से कारण हैं। आवा-गमन और यातायात के तीव्रता से विकास के कारण श्रम-विभाजन अत्यधिक हो गया है और विशेषीकरण भी बहुत ही बढ़ गया है। हमारी वित्त-व्यवस्था भी इस जटिलता के लिए उत्तरदायी है। हमारी पूर्ण आर्थिक व्यवस्था द्रव्य पर निर्भर है और द्रव्य हमारे नियंत्रण में नहीं है। यह ठीक ही कहा जाता है कि हमारी आर्थिक कठिनाइयाँ द्रव्य के प्रयोग के कारण हैं जिसने ऋण को प्रोत्साहन दिया है।

कुछ भी हो, यह तो निश्चय ही है कि विनिमय व्यवस्था ठीक प्रकार कार्य नहीं कर रही है। धन हमारी आवश्यकता से अधिक है परन्तु दुर्भाग्य-वश हम इसका ठीक वितरण करने में असमर्थ हैं। इसी कारण से हमारी आर्थिक व्यवस्था में सुधार के सुझाव दिये जाते हैं। इसी कारण से समाजवाद, साम्यवाद एवं आर्थिक योजना की उत्पादन बढ़ाने के नये ढंगों की अपेक्षा अधिक चर्चा की जाती है।

इससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हम सम्पत्ति उत्पादन को विनिमय या वितरण से अधिक भली प्रकार जानते हैं। इसी कारण आर्थिक साधनों एवं प्रयत्नों का दुरुपयोग हुआ है। हम वित्त-प्रणाली या

कम से कम विनिमय-प्रणाली के दास तो अवश्य ही हो गये हैं। हम अधिक मूल्य प्राप्त करने के हेतु खड़ी फसल जला सकते हैं ; दूध को सागर में बहा सकते हैं ; किन्तु वितरण के ढंगों को नहीं बदल सकते। कार्य करने की इच्छा होते हुए भी मनुष्यों को कार्य नहीं मिल पाता और वह भोजन भी उत्पन्न नहीं किया जाता जो सम्भव है। अवश्य ही हमारी समृद्धि वितरण अथवा विनिमय व्यवस्था पर निर्भर है।

प्रकरण २

वस्तु-विनिमय और विनिमय अनुपात

प्रश्न ५—वस्तु-विनिमय की परिभाषा करो; और यह स्पष्ट करो कि सब आर्थिक व्यवहार वस्तु-विनिमय क्यों हैं ?

उत्तर—वस्तु-विनिमय द्वारा वस्तुओं का अदल-बदल होता है। इसके लिए विनिमय माध्यम द्रव्य की सहायता नहीं लेनी पड़ती। एक वस्तु दूसरी वस्तु से बदली जाती है। किसान जुलाहे से गेहूँ के बदले में कपड़ा ले सकता है और जुलाहा इस प्रकार प्राप्त किये गये गेहूँ को जूतों से बदल सकता है। परन्तु आजकल के व्यवहार में वस्तु-विनिमय बहुत कम होता है। वस्तुएँ द्रव्य की सहायता से खरीदी और बेची जाती हैं। आज के युग में किसान अपनी फसल को सीधा कपड़ों और जूतों से नहीं बदलता। प्रथम वह फसल बेचकर द्रव्य प्राप्त करता है और फिर इस द्रव्य से इच्छानुसार वस्तु खरीदता है; इस प्रकार द्रव्य वस्तुओं के लेन-देन में बहुत सहायक है। परन्तु इतने पर भी द्रव्य केवल विनिमय माध्यम का ही कार्य करता है; अन्तिम रूप में तो वस्तु का वस्तु से ही बदला होता है। आज भी किसान फसल को जूतों, कपड़ों अथवा अन्य वस्तुओं से बदलता है; द्रव्य तो केवल विनिमय माध्यम है। अतएव वस्तु-विनिमय और द्रव्य द्वारा विनिमय में विशेष अन्तर नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि द्रव्य के कारण विनिमय सुविधापूर्वक और तीव्रता से किया जा सकता है। व्यापार का विकास होता है, और पूंजी संचय में आसानी होती है परन्तु फिर भी द्रव्य की सहायता द्वारा क्रय-विक्रय में वस्तु-विनिमय के गुण रहते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार इसका ज्वलंत उदाहरण है। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र से विनिमय माध्यम द्वारा व्यापार नहीं करता। दीर्घ काल में तो निर्यात ही आयात की अदायगी करती है। मध्य

काल में हिसाब चुकता करने के लिए कभी-कभी सोना विनिमय माध्यम के रूप में काम में लाया जाता था परन्तु इस प्रकार का व्यवहार बहुत सीमित ही रहता था।

अतएव सिद्ध है कि द्रव्य तो केवल विनिमय माध्यम है और यदि इसके कार्य में सरकार द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जाए तो द्रव्य प्रयोग से विनिमय गुणों में विशेष अन्तर नहीं होता।

प्रश्न ६—वस्तु-विनिमय किन दशाओं में सम्भव है? यह कब रुक जाता है?

उत्तर—यदि कोई व्यक्ति अपनी वस्तु को वस्तु-विशेष से बदलना चाहता है तो यह आवश्यक है कि दूसरा व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जिसके पास यह वस्तु-विशेष है और वह प्रथम व्यक्ति की वस्तु लेना चाहता है। जैसे यदि एक व्यक्ति के पास गाय है और वह गाय के बदले में कपड़ा लेना चाहता है तो दूसरा व्यक्ति ऐसा होना चाहिए जिसके पास कपड़ा हो और जिसे गाय की आवश्यकता हो, परन्तु ऐसे दो व्यक्तियों का मिलना बहुधा कठिन होता है।

जब वस्तु वस्तु से बदली जाती है तो विनिमय अनुपात निश्चय करना भी कठिन होता है। यदि वस्तु विभाजनशील है तो कोई कठिनाई नहीं होती। गेहूँ और चीनी का विनिमय अनुपात पाँच सेर गेहूँ के बदले में एक सेर चीनी हो सकता है। परन्तु अविभाज्य वस्तु जैसे गाय, घोड़ा के विनिमय अनुपात निश्चित करने में बहुत कठिनाई होती है। एक घोड़े के बदले में एक या दो ही गाय दी जा सकती हैं आधी या डेढ़ नहीं। इसी प्रकार यदि विनिमय दर दो गाय के बदले में एक घोड़ा है और किसी व्यक्ति के पास एक ही गाय है तो वह आधा घोड़ा नहीं खरीद सकता।

विनिमय अनुपात ऐसा होना चाहिए जो दोनों व्यक्तियों को स्वीकार हो अन्यथा विनिमय सम्भव नहीं हो सकता। यदि चीनी उत्पादक एक सेर चीनी के बदले में पाँच सेर गेहूँ माँगता है और किसान केवल चार सेर देना चाहता

है तो एक सेर चीनी का विनिमय नहीं हो सकता। परन्तु यदि वस्तु विभाजनशील है तो यह सम्भव है कि इस स्थिति में भी विनिमय अनुपात निश्चय किया जा सके। ऊपर के उदाहरण में यह सम्भव है कि किसान प्रथम आधा सेर चीनी के लिए ढाई सेर गेहूँ देने को राज़ी हो और द्वितीय आधा सेर चीनी के लिए केवल डेढ़ सेर। ऐसी स्थिति में आधा सेर चीनी का ढाई सेर गेहूँ से विनिमय होगा और उसके बाद विनिमय रुक जायेगा।

विनिमय अनुपात ऐसा होना चाहिए जो दोनों व्यक्तियों को स्वीकार हो। इसके स्थान पर यह भी कहा जा सकता है कि विनिमय तभी सम्भव है जब दोनों ही व्यक्तियों को उपयोगिता लाभ हो। जैसे-जैसे अधिक वस्तु का विनिमय होता जाता है, उपयोगिता लाभ घटता जाता है और अन्त में प्रथम एक व्यक्ति को और फिर दोनों व्यक्तियों को उपयोगिता लाभ होना समाप्त हो जाता है। जैसे ही एक व्यक्ति को विनिमय से उपयोगिता लाभ होना रुक जाता है वैसे ही विनिमय का भी उस समय तक के लिए अन्त हो जाता है जब तक कि फिर विनिमय अनुपात बदलने से दोनों को लाभ न होने लगे।

प्रश्न ७—यदि अ के पास सेब और ब के पास सन्तरे हैं तो सिद्ध करो कि विनिमय तभी प्रारम्भ होगा जब

$$\frac{\text{अ को सन्तरों की प्रारम्भिक उपयोगिता}}{\text{अ को सेब की सीमान्त उपयोगिता}}$$

$$\frac{\text{ब को सन्तरे की सीमान्त उपयोगिता}}{\text{ब को सेब की प्रारम्भिक उपयोगिता}} \text{ से अधिक होती है।}$$

उत्तर—यदि अ अपने सेबों को ब के सन्तरों से बदलना चाहता है तो यह आवश्यक है कि उसको प्रथम सन्तरे की उपयोगिता अन्तिम सेब की उपयोगिता से अधिक हो अन्यथा उसको विनिमय से उपयोगिता लाभ नहीं होगा। इसलिए हम कह सकते हैं कि

(अ को सन्तरे की प्रारम्भिक उपयोगिता) / (अ को सेब की सीमान्त उपयोगिता) एक से अधिक होनी चाहिए

इसी कारणवश ब सन्तरों को सेब से तब तक नहीं बदलेगा जब तक

(ब को सेब की प्रारम्भिक उपयोगिता) / (ब को सन्तरे की सीमान्त उपयोगिता) एक से अधिक नहीं है।

इसका अर्थ यह हुआ कि विनिमय के लिए

(ब को सन्तरे की सीमान्त उपयोगिता) / (ब को सेब की प्रारम्भिक उपयोगिता) एक से कम होना परम आवश्यक

है। क्योंकि यह अनुपात एक से कम है अतः यह प्रथम अनुपात से भी कम हुआ। क्योंकि प्रथम अनुपात एक से अधिक है इसलिए

(अ को सन्तरे की प्रारम्भिक उपयोगिता) / (ब को सेब की प्रारम्भिक उपयोगिता) का

(ब को सन्तरे की सीमान्त उपयोगिता) / (ब को सेब की प्रारम्भिक उपयोगिता) से अधिक होना अनिवार्य है।

प्रश्न ८—निम्न तालिका में अ और ब की गेहूँ और चावल की सीमान्त उपयोगिताएँ दी गई हैं। यदि एक सेर गेहूँ एक सेर चावल से बदला जाता है तो विनिमय किस समय तक होता रहेगा और दोनों को कितना उपयोगिता लाभ होगा? उदाहरण में अ के पास चावल और ब के पास गेहूँ हैं।

अ की सीमान्त उपयोगिताएँ		ब की सीमान्त उपयोगिताएँ	
चावल	गेहूँ	चावल	गेहूँ
१००	८०	९५	१५०
९०	७०	८५	१३०
८०	६०	७५	११०
७०	५०	६५	९०
६०	३०	५५	७०
५०	१०	३६	५०

उत्तर—यदि एक सेर चावल एक सेर गेहूँ से बदला जाता है तो जब अ एक सेर चावल देता है तो उसे ५० इकाई उपयोगिता (जो उसके लिए चावल की सीमान्त उपयोगिता है) त्यागनी पड़ती है परन्तु चावल के बदले में उसे एक सेर गेहूँ मिलता है अर्थात् ८० इकाई उपयोगिता मिलती है। इस प्रकार ५० इकाई उपयोगिता देकर ८० इकाई उपयोगिता बदले में मिलती है अर्थात् अ को प्रथम विनिमय से ३० इकाई उपयोगिता लाभ होता है। दूसरा सेर चावल बदलने से इसी प्रकार उसे १० इकाई उपयोगिता लाभ होता है परन्तु यदि वह तीसरा सेर चावल बदलता है तो १० इकाई उपयोगिता की हानि होती है।

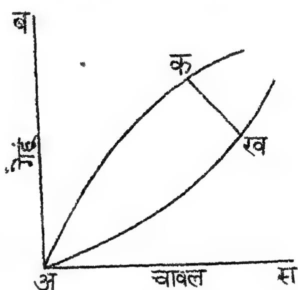
दूसरी ओर जब ब प्रथम सेर गेहूँ देता है और बदले में उतना ही चावल प्राप्त करता है तो गेहूँ के देने में ५० इकाई उपयोगिता त्यागता है और चावल के प्राप्त करने में ९५ इकाई उपयोगिता प्राप्त करता है। इस प्रकार उसे वास्तविक ४५ इकाई उपयोगिता लाभ होता है। दूसरा सेर गेहूँ बदलने में १५ इकाई उपयोगिता लाभ होता है परन्तु यदि वह एक सेर गेहूँ और बदले तो उसे १५ इकाई उपयोगिता की हानि हो।

अतः स्पष्ट है कि केवल दो सेर गेहूँ और चावल का विनिमय होगा। तीसरे सेर का विनिमय सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसा करने से अ और ब दोनों ही को हानि होगी। इस दो सेर गेहूँ चावल के विनिमय में अ को ४० इकाई और ब को ६० इकाई उपयोगिता लाभ होगा।

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि विनिमय उसी समय तक सम्भव है जब तक दोनों को उपयोगिता लाभ होता रहे। जैसे ही एक को भी उपयोगिता का लाभ होना रुक जाता है या उपयोगिता की हानि होने लगती है वैसे ही विनिमय रुक जाता है। उपयोगिता लाभ ज्ञात करने के लिए बदले में प्राप्त की गई वस्तु की उपयोगिता में से दी गई वस्तु की उपयोगिता घटानी पड़ती है।

प्रश्न ६—उदासीनतासूचक रेखा और सौदा रेखा अथवा मोल-भाव रेखा का क्या अर्थ है ?

उत्तर—विनिमय करते समय प्रत्येक व्यक्ति यही प्रयत्न करता है कि उपयोगिता लाभ अधिकतम हो। यदि कोई व्यक्ति सौदा करने में चतुर है तो यह सम्भव है कि वह विनिमय करने वाले दूसरे व्यक्ति को उपयोगिता लाभ बिल्कुल न रहने दे; परन्तु यह सदैव सम्भव नहीं है। इतना तो निश्चित ही है कि यदि विनिमय से उपयोगिता लाभ न हो तो हानि भी न हो; यदि हानि होगी तो विनिमय नहीं हो सकता। जिस स्थिति में विनिमय से न लाभ होता है और न हानि, उस स्थिति में व्यक्ति को विनिमय से कोई रुचि नहीं होती, वह उदासीन रहता है। जब एक व्यक्ति से सम्बन्धित एक वस्तु के लिए ऐसी बहुत-सी स्थितियों का ज्ञान हो जाता है तो इन स्थितियों की रेखा बनाई जा सकती है। यदि हम रेखा चित्र के एक ओर एक वस्तु को लें और दूसरी ओर दूसरी वस्तु को लें और ऐसे कई बिन्दु ज्ञात करें कि जिन पर विनिमय से न लाभ है न हानि, और इन सब बिन्दुओं को मिला दें तो हमें उदासीनतासूचक रेखा प्राप्त हो जायेगी।



ऊपर के चित्र में अ-स रेखा चावल का संकेत करती है और अ-ब गेहूँ का। यदि क के पास गेहूँ और ख के पास चावल हैं और यह आपस में विनिमय करते हैं तो अ-क क की उदासीनता-सूचक रेखा होगी और अ-ख ख की उदासीनता-सूचक रेखा होगी। अ-क रेखा नीचे की ओर झुकी है इससे यह प्रदर्शित होता है कि जैसे-जैसे क के पास चावल की मात्रा बढ़ती जाती है और गेहूँ की कम होती जाती है तो वह एक इकाई चावल के लिए कम और कम गेहूँ देना चाहता है। अ की यह इच्छा उपयोगिता ह्रास के सिद्धान्त

पर निर्भर है। इसी प्रकार अ-ख रेखा प्रकट करती है कि जैसे-जैसे ब के पास गेहूँ की मात्रा बढ़ती जाती है और चावल की घटती जाती है तो वह अधिक गेहूँ के बदले में कम चावल देना चाहता है। अ-क और अ-ख दोनों ही रेखाएँ अ बिन्दु से आरम्भ होती हैं क्योंकि बिना चावल लिये क गेहूँ नहीं दे सकता और बिना गेहूँ लिये ख चावल नहीं दे सकता।

यदि विनिमय अ-क रेखा के अनुसार किया जाये तो क को अधिकतम लाभ होगा और यदि अ-ख रेखा के अनुसार विनिमय हो तो ख का लाभ अधिकतम होगा। यदि विनिमय इन दो रेखाओं के बीच होगा तो क और ख दोनों ही को उपयोगिता लाभ होगा।

जब क और ख दोनों ही को मोल-भाव करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी, तो कभी क को और कभी ख को अधिक उपयोगिता लाभ होगा। उपयोगिता लाभ की यह स्थितियाँ अ-क और अ-ख के बीच के बिन्दुओं से प्रकट की जाती हैं। इन रेखाओं का रूप क-ख रेखा के समान होगा। अर्थशास्त्र में इस प्रकार की रेखाएँ मोल-भाव रेखाएँ अथवा सौदा-रेखाएँ कहलाती हैं। यदि क-ख रेखा का बिन्दु, जिसके अनुसार वास्तविक विनिमय होता है, क के अधिक समीप है तो ख को उपयोगिता लाभ अधिक होता है और यदि बिन्दु ख के समीप है तो क को अधिक लाभ होता है।

प्रश्न १०—सिद्ध करो कि वस्तु-विनिमय में अन्तिम रूप से विनिमय अनुपात और दो वस्तुओं का सीमान्त उपयोगिता अनुपात बराबर होता है।

उत्तर—यह सम्भव है कि दो व्यक्तियों में विनिमय के समय एक को बहुत अधिक उपयोगिता लाभ हो और दूसरे को बहुत कम। जैसे अ एक सेब के बदले में १५ सन्तरे प्राप्त कर सकता है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि उसे इस प्रथम सेब की उपयोगिता केवल १५ सन्तरे ही हो, यह १० सन्तरे भी हो सकती है। जब एक सेब की सीमान्त उपयोगिता १० सन्तरे है तो सीमान्त उपयोगिता अनुपात १ : १० होगा। परन्तु यह विनिमय दर

अस्थायी होगी; क्योंकि जैसे-जैसे अ सेब देता जायेगा और सन्तरे लेता जायेगा वैसे-वैसे ही सीमान्त उपयोगिता ह्रास सिद्धान्त के अनुसार सेब की उपयोगिता बढ़ती जायेगी और सन्तरों की सीमान्त उपयोगिता घटती जायेगी। इस कारणवश विनिमय अनुपात पहले १ : १४ फिर १ : १३, १ : १२, १ : ११ और अन्त में १ : १० होगा। इस प्रकार जैसे-जैसे विनिमय होता जाता है वैसे ही वैसे वास्तविक विनिमय-अनुपात और स्वीकृत विनिमय-अनुपात में अन्तर कम होता जाता है और अन्त में दोनों बराबर हो जाते हैं। जैसे ही दोनों बराबर हो जाते हैं वैसे ही विनिमय से उपयोगिता लाभ समाप्त हो जाता है। अतः विनिमय भी इस सीमा के बाद समाप्त हो जाता है।

प्रकरण ३

बाज़ार और मूल्य का महत्त्व

प्रश्न ११—बाज़ार की परिभाषा करो। अर्थशास्त्र के अनुसार बाज़ार की क्या विशेषताएँ होनी चाहिएँ?

उत्तर—तर्कपूर्ण शब्दों में बाज़ार की परिभाषा करना बहुत ही कठिन है। सब आर्थिक अध्ययनों में इसी परिभाषा पर जमे रहना तो और भी कठिन है।

फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि बाज़ार ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ माल का क्रय-विक्रय होता है। बाज़ार के लिए ग्राहकों और विक्रेताओं का एक स्थान पर होना भी अनिवार्य नहीं है। ग्राहक और विक्रेता अलग-अलग स्थान पर रहते हुए भी एक ही बाज़ार में हो सकते हैं; उदाहरण के लिए सोना, चाँदी, रबर और रूई इत्यादि का विश्व बाज़ार है और फिर भी ग्राहक एवं विक्रेता एक स्थान पर एकत्रित नहीं होते। इसके अतिरिक्त अर्थशास्त्र में बाज़ार का अर्थ किसी वस्तु-विशेष के बाज़ार से होता है, स्थान-विशेष से नहीं। इसी प्रकार एक स्थान के सब ग्राहक विक्रेता एक बाज़ार में नहीं कहे जाते किन्तु एक वस्तु के ग्राहक एवं विक्रेता एक बाज़ार बनाते हैं।

परन्तु ऊपर के वर्णन से बाज़ार की परिभाषा नहीं हो पाती। इससे तो केवल बाज़ार के कुछ तत्त्वों का ज्ञान होता है। हम अपनी परिभाषा देने के पूर्व कुछ और अर्थशास्त्रियों की परिभाषा देना उचित समझते हैं।

प्रोफ़ैसर ऐली का मत है कि बाज़ार उस विस्तृत क्षेत्र को कहते हैं जिसमें वस्तु-विशेष का मूल्य एक ही प्रकार के तत्त्वों द्वारा निर्धारित होता है। बाज़ार माल ख़रीदने और बेचने के स्थान को नहीं कहते।

"प्रोफ़ैसर चैपमैन का कहना है कि अर्थशास्त्र के अनुसार बाज़ार का अर्थ स्थान-विशेष से नहीं है। एक वस्तु के ऐसे सब ही ग्राहक और विक्रेता जिनमें प्रत्यक्ष स्पर्द्धा है एक ही बाज़ार में हैं चाहे वह भिन्न स्थानों पर रहते हों।

प्रोफ़ैसर हौबसन के मतानुसार प्रत्यक्ष रूप से स्पर्द्धा करने वाले सब दूकानदारों को समूहिक रूप से बाज़ार के नाम से पुकारा जाता है।

प्रोफ़ैसर जेवन्स की परिभाषा तो प्रसिद्ध ही है। उनका मत है कि प्रारम्भ में बाज़ार ऐसा स्थान होता था जहाँ वस्तुएँ बिक्री के लिए लाई जाती थीं परन्तु आजकल बाज़ार ऐसे व्यक्तियों का समूह समझा जाता है जिनमें व्यापारिक सम्बन्ध हो और जो वस्तुओं का क्रय-विक्रय करते हों।

वाकर के मतानुसार अर्थशास्त्र में बाज़ार के दो अर्थ हैं। प्रथम तो एक वस्तु का एक बाज़ार होता है और द्वितीय विनिमय करने वाला एक समूह एक बाज़ार होता है।

अन्त में हम कॉर्नो की परिभाषा पर विचार करते हैं। उनके कथनानुसार बाज़ार क्रय-विक्रय का स्थान नहीं है। वह पूर्ण क्षेत्र जिसमें ग्राहकों और विक्रेताओं में ऐसा सम्पर्क है कि आसानी और शीघ्रता से पूर्ण क्षेत्र में एक भाव स्थापित हो सके, एक बाज़ार है।

ऊपर की परिभाषाओं के अध्ययन से हम निम्न निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। बाज़ार का अर्थ किसी स्थान से नहीं है। इसका सम्बन्ध वस्तु-विशेष के ग्राहकों और विक्रेताओं से है और बाज़ार में स्पर्द्धा होती है।

बाज़ार का विशेष गुण यही है कि स्वतंत्र स्पर्द्धा के कारण एक समय में एक वस्तु का एक भाव हो, अतः बाज़ार में स्पर्द्धा होना परम आवश्यक है। यदि स्पर्द्धा पूर्ण है तो संपूर्ण बाज़ार में एक भाव होना निश्चित ही है। परन्तु स्पर्द्धा सदैव ही अपूर्ण होती है, पूर्ण स्पर्द्धा तो कभी भी देखने को नहीं मिलती। सूचना की कमी, यातायात, व्यय और कर इत्यादि अपूर्ण स्पर्द्धा के लिए उत्तरदायी हैं, इन्हीं के कारण किसी भी वस्तु का पूर्ण बाज़ार दृष्टिगोचर नहीं होता।

अन्त में हमें विचार करना है कि वास्तव में बाज़ार क्या है? ग्राहक

और विक्रेता, ग्राहकों और विक्रेताओं का संगठन, वस्तु का स्टाक या ग्राहकों और विक्रेताओं का पारस्परिक सम्बन्ध तो बाज़ार नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनके द्वारा बाज़ार की परिभाषा पूरी नहीं हो पाती । अर्थशास्त्र के अनुसार बाज़ार कोई भौतिक वस्तु नहीं है । अर्थशास्त्र में तो हम केवल इतना ही कह सकते हैं कि यह अमुक वस्तु का बाज़ार है । इसका अर्थ केवल इतना होता है कि अमुक वस्तु की माँग और पूर्ति है । बाज़ार में स्वतंत्र स्पर्द्धा होती है यह कहना तो ठीक ही है ।

प्रश्न १२—निम्नलिखित का अर्थ स्पष्ट करो :—

(अ) बड़ा बाज़ार (ब) विस्तृत बाज़ार (स) स्थिर बाज़ार और (द) स्थानीय बाज़ार ।

उत्तर—बड़ा बाज़ार—जब किसी निश्चित समय में किसी वस्तु की माँग और पूर्ति अर्थात् क्रय-विक्रय अधिक होता है तो बाज़ार बड़ा बाज़ार कहलाता है । इसका अर्थ केवल इतना ही होता है कि निश्चित समय में क्रय-विक्रय का परिमाण अधिक होता है । बड़े बाज़ार के लिए यह आवश्यक नहीं है कि ग्राहकों और विक्रेताओं की संख्या भी अधिक हो । क्योंकि दीर्घ-काल में पूर्ति माँग पर निर्भर होती है इसलिए यह कहना उचित होगा कि बाज़ार का बड़ा होना न होना माँग के परिमाण पर निर्भर होता है । परन्तु वास्तव में जब हम बाज़ार के लेन-देन की चर्चा करते हैं तो हम केवल द्रव्य से वस्तु-विनिमय की मात्रा से ही किसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं ।

परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि बाज़ार के बड़े होने न होने का निश्चय कुल द्रव्य मूल्य से नहीं किया जाता वरन् वस्तु की मात्रा या संख्या से ; क्योंकि भिन्न समयों पर एक ही मात्रा का द्रव्य मूल्य भिन्न हो सकता है । भिन्न वस्तुओं के बाज़ारों की तुलना भी सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसा कोई पैमाना नहीं है जिसके द्वारा सभी वस्तुओं की मात्रा को नापा जा सके । परन्तु हम भिन्न देशों के एक ही वस्तु के बाज़ारों की तुलना कर सकते हैं ।

विस्तृत बाज़ार—जिस बाज़ार के ग्राहक अधिक लम्बे-चौड़े क्षेत्र में फैले रहते हैं वह बाज़ार विस्तृत बाज़ार कहलाता है अर्थात् बाज़ार का

विस्तार बाज़ार के क्षेत्र के विस्तार पर निर्भर है। विस्तृत बाज़ार के लिए केवल ग्राहकों का विस्तृत क्षेत्र में फैले होना आवश्यक है, विक्रेताओं का नहीं। यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि विक्रेता विस्तृत क्षेत्र में फैले हों और ग्राहक केवल संकुचित क्षेत्र में हों तो बाज़ार विस्तृत बाज़ार कहलायेगा अथवा नहीं? इस बारे में अधिकतर अर्थशास्त्रियों का मत है कि विस्तृत बाज़ार के लिए ग्राहकों का दूर-दूर फैले होना आवश्यक है। विक्रेताओं के क्षेत्र पर बाज़ार का विस्तार निर्भर नहीं है।

स्थिर बाज़ार—जिस बाज़ार में भिन्न समयों पर एक ही भाव अर्थात् स्थिर भाव रहता है वह बाज़ार स्थिर बाज़ार कहलाता है। परन्तु ऐसा बाज़ार जिसमें भाव में घटा-बढ़ी न हो केवल कोरी कल्पना है; वास्तविक रूप में तो भावों में घटा-बढ़ी होती ही रहती है। किन्तु फिर भी हम भावों के उतार-चढ़ाव की दृष्टि से एक ही वस्तु के भिन्न बाज़ारों अथवा भिन्न वस्तुओं के बाज़ारों की तुलना तो कर ही सकते हैं। यह कहना सम्भव है कि अमुक वस्तु का बाज़ार अधिक स्थिर है और अमुक का कम स्थिर अथवा अमुक बाज़ार अधिक स्थिर है और अमुक कम। मूल्य-परिवर्तन तो माँग और पूर्ति में भिन्न दिशा में अथवा एक ही दिशा में भिन्न परिवर्तन होने के कारण होता है। यदि माँग घटने-बढ़ने के साथ उतनी ही पूर्ति घट-बढ़ जाये या पूर्ति घटने-बढ़ने के साथ उतनी ही माँग घट-बढ़ जाये तो भाव स्थिर रहे, अर्थात् यदि माँग और पूर्ति में सदैव संतुलन रहे तो भाव और बाज़ार स्थिर रहे।

स्थानीय बाज़ार—यदि वस्तु की पूर्ति किसी स्थान-विशेष या क्षेत्र-विशेष में सीमित हो तो बाज़ार स्थानीय बाज़ार कहलाता है। स्थानीय बाज़ार में विक्रय केवल निश्चित स्थान या क्षेत्र में होता है किन्तु जब यह कहा जाता है कि अमुक वस्तु का स्थानीय बाज़ार है तो लोग समझते हैं कि इसकी माँग सीमित क्षेत्र में है। परन्तु ऐसा समझना अनुचित है। स्थानीय बाज़ार से तो केवल इतना समझना चाहिए कि विक्रय एक स्थान अथवा सीमित क्षेत्र में होता है। किन्तु यह विक्रय बड़े क्षेत्र की माँग के कारण भी हो सकता है।

अन्त में कहा जा सकता है कि बहुधा बड़ा बाज़ार विस्तृत बाज़ार भी

होता है और उसके स्थानीय बाज़ार होने का अवसर कम रहता है। इसी प्रकार आमतौर से विस्तृत बाज़ार बड़ा बाज़ार भी होता है। इतने पर भी बड़े बाज़ार या विस्तृत बाज़ार अथवा बड़े और विस्तृत बाज़ार और स्थानीय बाज़ार में कोई विशेष सम्बन्ध निश्चित करना सम्भव नहीं है। यह कहा जा सकता है कि बाज़ार जितना ही अधिक विस्तृत होता है उसके स्थिर होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होती है क्योंकि विस्तृत बाज़ार में माँग और पूर्ति के संतुलन का अधिक अवसर रहता है।

प्रश्न १३—किसी वस्तु का बाज़ार बड़ा होने के लिए किन-किन दशाओं की आवश्यकता होती है? बड़े बाज़ार के क्या हानि-लाभ हैं?

उत्तर—जब किसी वस्तु के ग्राहक बड़े क्षेत्र में फैले होते हैं तो इस वस्तु का बाज़ार बड़ा होता है। अतः बाज़ार बड़ा होने के लिए यह आवश्यक है कि वस्तु ऐसी हो जो बहुत बड़े क्षेत्र के व्यक्तियों के लिए उपयोगी हो। रबर, सोना, चाँदी, गेहूँ आदि ऐसी वस्तुएँ हैं जिनके बहुत से उपयोग हैं; इसीलिए उनकी अधिक और विस्तृत क्षेत्र में माँग होना स्वाभाविक ही है।

बाज़ार बड़ा होने के लिए यातायात की सुगमता भी नितान्त आवश्यक है। यदि यातायात की सुगमता नहीं है तो वस्तु बड़े क्षेत्र के ग्राहकों तक नहीं पहुँचाई जा सकती। यातायात सुगमता का अर्थ केवल यातायात साधनों की उपलब्धता से नहीं है, वस्तु भी चल होनी चाहिए। मकान, सड़कें इत्यादि अचल वस्तुएँ हैं अतः सभी यातायात साधन—रेल, वायुयान, समुद्री जहाज़ इत्यादि उपलब्ध होने पर भी इन वस्तुओं का एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना असम्भव ही है। यह भी आवश्यक है कि वस्तु के मूल्य की तुलना में यातायात व्यय कम हो। यदि वस्तु के मूल्य की तुलना में यातायात व्यय अधिक है तो वस्तु का बाज़ार बड़ा नहीं हो सकता। ईंटों, पत्थरों इत्यादि का बाज़ार यातायात व्यय अधिक होने के कारण ही छोटा होता है।

बड़े बाज़ार के लिए यह भी आवश्यक है कि वस्तु शीघ्र बिगड़ने वाली न हो। यातायात समय, दूरी पर निर्भर होता है। जितनी ही अधिक दूर माल भेजना होता है उतना ही अधिक समय यातायात में लगता है। यदि

वस्तु दूसरे स्थान पर पहुँचने तक ठीक नहीं रह सकती तो उस स्थान को इसका यातायात असम्भव हो जाता है।

यदि वस्तु खरीदने से पूर्व उसके गुणों का ज्ञान हो सके तो ऐसी वस्तु के अधिक ग्राहक हो सकते हैं। जिन वस्तुओं का गुण वर्णन आसान है, जिन वस्तुओं पर चिन्ह द्वारा उनके गुणों की छाप लगाई जा सकती हैं, जो वस्तुएँ सिक्केबन्द हैं और जिनका नमूना आसानी से भेजा जा सकता है, उन वस्तुओं का बाज़ार बड़ा होता है।

अन्त में बड़ा बाज़ार तभी सम्भव है जब पूर्ति भी अधिक हो। यदि पूर्ति कम है तो सम्भव है कि किसी छोटे से स्थान के कुछ सम्पन्न परिवार ही सारी वस्तु खरीद लें और शेष के लिए कुछ न बचे। परन्तु यदि भिन्न स्थानों के ग्राहकों की क्रय शक्ति बराबर हो तो थोड़ी मात्रा में पूर्ति होते हुए भी बड़ा बाज़ार होना सम्भव है।

बड़े बाज़ार से विक्रेता को यह लाभ है कि माँग में परिवर्तन होने का भय कम रहता है क्योंकि यदि बड़े बाज़ार में एक स्थान पर माँग कम हो जाती है तो दूसरे स्थान पर माँग की वृद्धि सम्भव है। स्थिर मांग होने से विक्रेता को भविष्य की मांग के अनुमान में कठिनाई नहीं पड़ती अतः ऐसी स्थिति में वह सुगमतापूर्वक भविष्य के लिए उत्पादन योजना बना सकता है।

बड़े बाज़ार से कोई विशेष हानि तो नहीं है। हाँ, यदि बड़े बाज़ार के कारण विशेषीकरण हो जाता है और सारे संसार की वस्तु-विशेष की माँग विश्व के छोटे भाग द्वारा सन्तुष्ट की जाती है तो युद्धकाल में अवश्य ही भय हो जाता है। आत्म-निर्भरता शान्ति-काल में तो आवश्यक नहीं है किन्तु युद्ध-काल में राष्ट्र की सुरक्षा इसी पर निर्भर होती है।

प्रश्न १४—पूर्ति का अर्थशास्त्र में क्या अर्थ है? माँग के प्रसंग में स्पष्ट करो।

उत्तर.—जब कोई व्यक्ति किसी वस्तु के बदले में कोई वस्तु देने को तैयार होता है तो कहा जाता है कि अमुक व्यक्ति के पास अमुक वस्तु की पूर्ति है। मांग की तरह पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि या तो विनिमय

हो रहा हो या व्यक्ति विनिमय करने को तैयार हो । यदि किसी व्यक्ति के पास किसी वस्तु का स्टाक है और वह विनिमय करने के लिए तैयार नहीं है तो यह स्टाक पूर्ति नहीं कहलायेगा। जब लोग कोई वस्तु खरीदना चाहते हैं तो अर्थशास्त्र में इसे माँग कहते हैं, इसी प्रकार जब कोई व्यक्ति वस्तु बेचना चाहता है तो यह पूर्ति कहलाती है। जब किसी वस्तु जैसे पुस्तक का क्रय-विक्रय होता है तो पुस्तक खरीदने वाला अर्थात् माँग करने वाला द्रव्य की पूर्ति करता है और पुस्तक विक्रेता द्रव्य की माँग करता है।

बाज़ार के मूल्य पर प्रत्येक समय कुछ विक्रेता और कुछ ग्राहक अवश्य रहते हैं परन्तु यह सदैव आवश्यक नहीं है कि माँग और पूर्ति बराबर हों। जिस मूल्य पर माँग और पूर्ति बराबर होती है वह मूल्य संस्थिति-मूल्य कहलाता है। जब मूल्य कम होता है तो माँग अधिक और पूर्ति कम होती है। किन्तु जब मूल्य अधिक होता है तो माँग कम और पूर्ति अधिक होती है। उदाहरण के तौर पर यदि मूल्य पाँच रुपये इकाई है तो माँग पाँच इकाई और पूर्ति तीन इकाई अथवा पूर्ति पाँच इकाई और माँग तीन इकाई हो सकती है; किन्तु दोनों ही दशाओं में तीन इकाई से अधिक क्रय-विक्रय सम्भव नहीं है। जिस प्रकार प्रभावोत्पादक माँग की मात्रा मूल्य पर निर्भर है इसी प्रकार प्रभावोत्पादक पूर्ति की मात्रा भी मूल्य पर ही निर्भर है। पूर्ति की मात्रा व्यक्तियों के बेचने की इच्छा पर निर्भर होती है, परन्तु प्रभावोत्पादक माँग मूल्य अथवा विनिमय अनुपात पर निर्भर है।

प्रश्न १५—अल्पकालीन और दीर्घकालीन पूर्ति किन दशाओं पर निर्भर होती है?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर देने से पूर्व दीर्घ-काल और अल्प-काल का ठीक-ठीक अर्थ समझना नितान्त आवश्यक है क्योंकि प्रश्न का उत्तर इन शब्दों की परिभाषाओं पर निर्भर होगा। अल्प-काल वह काल है जिसमें वस्तु की मात्रा स्थिर होती है, बढ़ाई नहीं जा सकती। दीर्घ-काल वह काल है जिसमें मात्रा बढ़ाई जा सकती है। कभी-कभी दीर्घ-काल के दो भाग कर दिए जाते हैं—सामान्य दीर्घ-काल और अति दीर्घ-काल। सामान्य

दीर्घ-काल में उत्पादन वृद्धि केवल वर्त्तमान साधनों को अधिक समय तक उपयोग करने से होती है, किन्तु अति दीर्घ-काल में पूर्ति वृद्धि के लिए अधिक साधनों का उपयोग किया जाता है।

इस अल्प-काल में पूर्ति की मात्रा विक्रेताओं के वर्त्तमान माल के बेचने की इच्छा पर निर्भर होती है। अधिक से अधिक वह अपना पूरा माल बेच सकते हैं अतः पूर्ति की अधिकतम मात्रा वर्त्तमान माल है। यदि माल शीघ्र बिगड़ने वाला होता है तो विक्रेता पूरा माल बेचने को इच्छुक रहते हैं; अतः जब माल बिगड़ने वाला होता है तो पूर्ति लगभग स्टाक के बराबर होती है। स्पर्द्धा की स्थिति में तो यह बिलकुल निश्चित रूप से होता है। किन्तु, यदि माल शीघ्र बिगड़ने वाला नहीं है और भविष्य में मूल्य बढ़ने की आशा है तो स्टाक का कुछ भाग भविष्य के लिए रोका जा सकता है। परन्तु फिर भी यह कहा जा सकता है कि अल्प-काल में पूर्ति लगभग स्थिर ही रहती है और यह वर्त्तमान स्टाक के बराबर होती है।

दीर्घ-काल में पूर्ति बढ़ाई जा सकती है अतः दीर्घ-काल में अल्प-काल की तरह पूर्ति की कोई अधिकतम सीमा नहीं होती। दीर्घ-काल में पूर्ति की मात्रा माँग की दृढ़ता पर निर्भर रहती है। प्रत्येक उत्पादक उस समय तक उत्पादन बढ़ाने का प्रयत्न करता रहता है जब तक लागत न्यूनतम न हो जाये और मूल्य इसके बराबर न हो जाये। दीर्घ-काल में पूर्ति और माँग संतुलित होने का प्रयत्न करती हैं। दीर्घ-काल में पूर्ति माँग और लागत दो तत्त्वों पर निर्भर होती है, केवल माँग पर नहीं। जितनी अधिक लागत होगी उतना ही कम उत्पादन होगा और जितनी ही अधिक माँग होगी उतना ही अधिक उत्पादन होगा।

संक्षेप में दीर्घकालीन पूर्ति, लागत और माँग-मूल्य पर निर्भर होती है।

प्रश्न १६—किसी वस्तु के स्टाक और पूर्ति में क्या अन्तर है? दोनों में क्या पारस्परिक सम्बन्ध है?

उत्तर—वह सब माल जो किसी एक समय उपलब्ध है, उस समय का स्टाक कहलाता है। पूर्ति स्टाक का वह भाग है जो विक्रेता बेचना चाहते

हैं। वास्तव में विक्रेता स्टाक से अधिक माल नहीं बेच सकते। परन्तु, यदि मूल्य अनुकूल है तो एक विशेष विक्रेता दूसरे विक्रेताओं से माल खरीद कर अपने वर्त्तमान स्टाक से अधिक मात्रा बेचने को प्रस्तुत हो सकता है। फिर भी किसी समय भी पूर्ति सब विक्रेताओं के सामूहिक स्टाक से अधिक नहीं हो सकती।

यह कहा जा सकता है कि साधारणतः किसी भी मूल्य पर सम्पूर्ण स्टाक नहीं बेचा जाता; अतएव सदैव ही पूर्ति स्टाक से कम होती है।

क्योंकि पूर्ति स्टाक पर निर्भर होती है अतः किसी भी समय अधिकतम पूर्ति स्टाक के बराबर हो सकती है और अल्प-काल में तो पूर्ति पूर्णतः स्टाक पर ही निर्भर होती है।

परन्तु दीर्घ-काल में स्टाक की मात्रा पूर्ति द्वारा निश्चित होती है। बेचने की इच्छा ही उत्पादन करने की इच्छा का निर्णय करती है; अतः दीर्घ-काल में स्टाक की प्रवृत्ति पूर्ति के बराबर होने की रहती है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि दीर्घ-काल में स्टाक पूर्ति पर निर्भर होता है।

प्रश्न १७—मूल्य का क्या अर्थ है? द्रव्य-मूल्य से इसका क्या **सम्बन्ध है?**

उत्तर.—साधारणतः आजकल भी मूल्य का अर्थ उपयोगिता ही समझा जाता है। सैलिगमैन का कथन है कि 'मूल्य द्वारा हम किसी वस्तु की अनुमानित उपयोगिता को प्रकट करते हैं।' परन्तु आजकल अर्थशास्त्र में मूल्य उपयोगिता के लिए नहीं किन्तु विनिमय-मूल्य के लिए प्रयोग में आता है। अब हम वस्तु का मूल्य उसकी उपयोगिता से नहीं आँकते। मूल्य आँकने के लिए हमें जानना पड़ता है कि वस्तु के बदले में हमें क्या प्राप्त हो सकता है? उपयोगिता तो केवल एक व्यक्ति तक सीमित होती है; परन्तु मूल्य-अनुमान के लिए विनिमय करने वाले दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है।

मूल्य के दो प्रयोगों के कारण दो प्रकार के मूल्य—उपयोग-मूल्य और विनिमय-मूल्य होते हैं परन्तु हम केवल विनिमय-मूल्य पर ही विशेषतः विचार करेंगे।

किसी वस्तु का मूल्य दूसरी वस्तुओं की वह मात्रा है जो इस वस्तु के बदले में प्राप्त की जा सके। हम एक वस्तु का मूल्य अन्य किसी भी वस्तु से माप सकते हैं। जब मूल्य द्रव्य से मापा जाता है तो यह द्रव्य-मूल्य कहलाता है, अर्थात् द्रव्य-मूल्य मूल्य का द्रव्य से माप है।

क्योंकि आजकल विनिमय द्रव्य की सहायता से ही होता है अतः मूल्य और द्रव्य-मूल्य में कोई भेद नहीं समझा जाता। आजकल तो द्रव्य के अतिरिक्त और किसी वस्तु से मूल्य-माप की आवश्यकता नहीं के बराबर होती है।

दूसरी वस्तुओं की तुलना में किसी वस्तु का मूल्य तभी घट-बढ़ सकता है जब उन वस्तुओं का मूल्य घटे-बढ़े। इस प्रकार जब द्रव्य का मूल्य बढ़ता है तो और सभी वस्तुओं का मूल्य घटता है और जब द्रव्य का मूल्य घटता है तो वस्तुओं का मूल्य बढ़ता है। किन्तु एक वस्तु के द्रव्य-मूल्य परिवर्तन से यह आवश्यक नहीं है कि दूसरी वस्तुओं के द्रव्य-मूल्य में भी परिवर्तन हो। अल्प-काल में यह सम्भव है कि एक वस्तु के द्रव्य-मूल्य में परिवर्तन हो जाये और अन्य वस्तुओं का द्रव्य-मूल्य स्थिर रहे। परन्तु एक वस्तु के मूल्य-परिवर्तन से कम से कम एक अन्य वस्तु का मूल्य-परिवर्तन अवश्यम्भावी है क्योंकि विनिमय के लिए दो वस्तुएँ होनी चाहिएँ।

सब वस्तुओं का मूल्य एक समय एक ही दिशा में परिवर्त्तित नहीं हो सकता। यदि कुछ वस्तुओं का मूल्य चढ़ता है तो कुछ का अवश्य ही गिरेगा। परन्तु द्रव्य की मात्रा में परिवर्तन से एक समय ही सब वस्तुओं का मुद्रा-मूल्य एक ही दिशा में घट-बढ़ सकता है। ऐसी स्थिति में केवल द्रव्य का मूल्य विपरीत दिशा में परिवर्त्तित होता है।

प्रश्न १८—मूल्य उपयोगिता, न्यूनता, या दोनों पर निर्भर होता है?

उत्तर—मूल्य की वर्त्तमान परिभाषा के अनुसार मूल्य किसी वस्तु की अन्य वस्तुओं के खरीदने की शक्ति है। इस परिभाषा के अनुसार मूल्य का अर्थ केवल विनिमय-मूल्य से है अतः मूल्य से हमारा तात्पर्य केवल विनिमय-मूल्य से ही है।

हमारे सम्मुख प्रश्न है कि मूल्य उपयोगिता पर, न्यूनता पर या दोनों पर निर्भर है ? यदि हम किसी वस्तु के बदले में उपयोगी वस्तु प्राप्त करते हैं तो जो वस्तु हम देते हैं वह दूसरे व्यक्ति के लिए उपयोगी वस्तु होनी चाहिए क्योंकि हम अनुपयोगी वस्तु के बदले में उपयोगी वस्तु प्राप्त नहीं कर सकते। वस्तु के मालिक के लिए अन्य वस्तुओं की तुलना में उसकी वस्तु की उपयोगिता होती है। अतः मूल्य के लिए हमें कम से कम ऐसी दो वस्तुओं का विचार करना पड़ता है जो दोनों ही उपयोगी हों। दो वस्तुओं का वस्तु-विनिमय तभी सम्भव है जब दोनों वस्तुएँ उपयोगी हों। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि दोनों वस्तुएँ दोनों के लिए उपयोगी हों। यदि गेहूँ की तुलना में चावल की उपयोगिता है तो इसका अर्थ केवल इतना ही है कि एक के लिए गेहूँ और दूसरे के लिये चावल उपयोगिता रखता है। किन्तु साधारणतया जब दो वस्तुओं का विनिमय होता है तो दोनों वस्तुएँ दोनों के लिए उपयोगिता रखती हैं।

ऊपर के विवरण से ऐसा ज्ञात पड़ता है कि विनिमय के लिये केवल उपयोगिता आवश्यक है। परन्तु, यदि हम समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करें तो हमें ज्ञात होगा कि वस्तु की न्यूनता होना भी परम आवश्यक है। केवल उसी वस्तु की उपयोगिता हो सकती है जिसकी न्यूनता है। अतः मूल्य न्यूनता पर निर्भर है। न्यूनता और मूल्य का सम्बन्ध ठीक प्रकार से समझने के लिए हमें न्यूनता को ठीक प्रकार समझ लेना चाहिए।

उदाहरण के लिए मान लीजिये कि अ और ब दो व्यक्ति हैं। अ के पास चावल और ब के पास गेहूँ हैं। विनिमय तभी सम्भव हो सकता है जब अ के चावल की ब को उपयोगिता हो और ब के गेहूँ की अ को। यदि अ को चावल की उपयोगिता नहीं है और ब को गेहूँ की उपयोगिता नहीं है तो अ गेहूँ की तनिक-सी मात्रा के लिए अपने सारे चावल दे सकता है और इसी प्रकार ब तनिक से चावल के लिए अपने सारे गेहूँ।

ऐसी स्थिति में गेहूँ और चावल का मूल्य गेहूँ और चावल की मात्रा पर निर्भर होगा। यदि अ के पास ऐसे पाँच मन चावल हैं जो उसके लिए बेकार

हैं तो वह पाँच मन चावल केवल एक सेर गेहूँ के बदले में भी दे सकता है। ऐसी स्थिति में एक मन चावल का मूल्य $\frac{1}{5}$ सेर गेहूँ होगा। किन्तु, यदि ब के पास दस मन गेहूँ हैं तो एक मन चावल का मूल्य दो मन गेहूँ होगा।

यह तो सत्य ही है कि शायद ही ऐसी कोई वस्तु हो जिसकी उसके मालिक को उपयोगिता न हो। हमारा उदाहरण तो केवल कल्पित ही है। परन्तु यदि हम यह भी मान लें कि मालिकों को उनके चावल और गेहूँ की उपयोगिता नहीं है तो भी कोई अन्तर नहीं होता।

बाज़ार में जितने अधिक ग्राहक और विक्रेता होंगे माँग और पूर्ति भी उतनी ही अधिक होगी और उतनी ही अधिक आवश्यकताएँ सन्तुष्ट की जा सकेंगी। यदि पूर्ति कम होती है तो केवल उग्र आवश्यकताएँ सन्तुष्ट की जा सकती हैं, किन्तु यदि पूर्ति अधिक है तो कम उग्र आवश्यकताएँ भी सन्तुष्ट की जा सकती हैं। अतः जब पूर्ति अधिक होती है तो सीमान्त उपयोगिता कम होती है और सीमान्त उपयोगिता कम होने के कारण मूल्य भी कम होता है। इस प्रकार सीमान्त उपयोगिता और मूल्य पूर्ति पर निर्भर हैं।

क्योंकि मूल्य उपयोगिता पर निर्भर होता है, अतः हम कह सकते हैं कि आवश्यकता जितनी ही प्रबल होगी मूल्य उतना ही अधिक होगा। बाज़ार का विचार करते हुए हम कह सकते हैं कि मूल्य का माप आवश्यकता की मात्रा पर निर्भर होता है। परन्तु सीमान्त उपयोगिता वस्तु की मात्रा पर निर्भर होती है अतः मूल्य पूर्ति की मात्रा पर निर्भर होता है।

न्यूनता का सम्बन्ध स्टाक से है। जितना ही अधिक स्टाक होगा उतनी ही कम न्यूनता होगी और जितना ही कम स्टाक होगा उतनी ही अधिक न्यूनता होगी।

इसलिए यह कहा जा सकता है कि मूल्य उपयोगिता पर निर्भर है। किन्तु सीमान्त उपयोगिता न्यूनता या अधिकता पर निर्भर होती है।

प्रश्न १६—स्पष्ट करो कि मूल्य सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त उत्पादन लागत दोनों के बराबर होता है।

उत्तर—क्योंकि द्रव्य-मूल्य द्रव्य के रूप में मूल्य है अतः यदि हम मूल्य के स्थान पर द्रव्य-मूल्य का प्रयोग करें तो कोई अन्तर नहीं होगा। इस प्रकार लाभ यह होगा कि उत्तर अधिक प्रचलित शब्दों में दिया जा सकेगा।

बाज़ार में किसी वस्तु का द्रव्य-मूल्य वह मूल्य है जिस पर ग्राहक और विक्रेता दोनों विनिमय करने को राज़ी हों। यदि द्रव्य-मूल्य लागत से कम है तो विक्रेता बेचने को तैयार नहीं होता और यदि द्रव्य-मूल्य बहुत अधिक है तो ग्राहक खरीदने को तैयार नहीं होते। वास्तविक द्रव्य-मूल्य वह मूल्य है जो ग्राहक और विक्रेता दोनों के अनुकूल हो; किन्तु यह सम्भव है कि यह मूल्य एक को अधिक हितकर हो और दूसरे को कम।

वस्तु खरीदते समय ग्राहक यह ध्यान रखता है कि द्रव्य-मूल्य वस्तु की उपयोगिता से अधिक न हो। साधारणतः वस्तु की प्रारम्भिक कुछ मात्रा की उपयोगिता द्रव्य-मूल्य से अधिक होती है परन्तु अन्तिम इकाई की उपयोगिता भी कम से कम द्रव्य-मूल्य के बराबर होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में सीमान्त उपयोगिता द्रव्य-मूल्य की उपयोगिता का माप है। द्रव्य-मूल्य वस्तु की सीमान्त उपयोगिता के द्रव्य-मूल्य के बराबर होता है।

द्रव्य-मूल्य ऐसा मूल्य होता है जिससे विक्रेता को हानि न हो; अतः यह आवश्यक है कि मूल्य कम से कम लागत के बराबर हो; क्योंकि विक्रेता को हानि तभी हो सकती है जब उसे वस्तु के बदले में लागत से कम द्रव्य मिले। यदि द्रव्य-मूल्य लागत से कम होता है तो उत्पादक को हानि होती है जिसके कारण वह भविष्य में उत्पादन या तो बिल्कुल बन्द कर देता है या कम कर देता है। माल कम होने से मूल्य बढ़ जाता है, इसी को दृष्टि में रखते हुए उत्पादन कम किया जाता है। साधारणतः प्रारम्भ में लागत द्रव्य-मूल्य से कम होती है परन्तु उत्पादन बढ़ाने से लागत भी बढ़ जाती है। विक्रेता को हानि न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि द्रव्य-मूल्य कम से कम अन्तिम इकाई की उत्पादन लागत के बराबर हो।

इससे हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मूल्य अथवा द्रव्य-मूल्य

सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त उत्पादन लागत दोनों के बराबर होता है। यह सिद्ध किया जा सकता है कि उत्पादन लागत उत्पादन करने में व्यय हुई उपयोगिता है। लागत उस वस्तु की उपयोगिता है जो हमें उत्पादन से पूर्व उपलब्ध थी। लागत का यह दृष्टिकोण रखते हुए यह सिद्ध किया जा सकता है कि किसी वस्तु का मूल्य उस वस्तु की सीमान्त उपयोगिता और अन्य वस्तुओं की सीमान्त उपयोगिता के अनुपात द्वारा निश्चित होता है।

प्रश्न २०—सिद्ध करो कि पुनरुत्पादन-योग्य और पुनरुत्पादन-अयोग्य वस्तुओं का द्रव्य-मूल्य भिन्न दशाओं द्वारा निर्धारित होता है।

उत्तर—मूलतः तो दोनों प्रकार की वस्तुओं का द्रव्य-मूल्य पूर्ति और माँग द्वारा ही निर्धारित होता है; किन्तु दो प्रकार की वस्तुओं की माँग और पूर्ति की स्थिति में अन्तर होता है। अन्तर विशेषतः पूर्ति में होता है, माँग की स्थिति तो लगभग एक सी ही रहती है। यदि वस्तु पुनरुत्पादन-योग्य होती है तो द्रव्य-मूल्य सीमान्त उपयोगिता और उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है। किन्तु पुनरुत्पादन-अयोग्य वस्तुओं की उत्पादन लागत मालूम करना असम्भव है। ऐसी स्थिति में जब लागत का ज्ञान नहीं है तो विक्रेता क्या दाम (मूल्य) लेगा ? इस पर हमें विचार करना है। जब वस्तु पुनरुत्पादन-अयोग्य होती है तो विक्रेता के पास सीमित स्टाक होता है और वह एकाधिकारी हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में विक्रेता अत्यधिक मूल्य मांग सकता है परन्तु फिर भी मूल्य वस्तु की सीमान्त उपयोगिता से अधिक नहीं हो सकता। मूल्य निश्चित करते समय एकाधिकारी को यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि मूल्य इतना अधिक न हो कि जिससे दूसरे विक्रेता स्टाक बढ़ा दें। यदि एकाधिकारी सारा माल बेचने को आतुर न हो तो वह काफ़ी ऊँचे दाम पर थोड़ा माल बेच सकता है। ऐसी स्थिति में केवल कुछ धनी व्यक्ति ही वस्तु खरीदेंगे। किन्तु सारा माल तो केवल माल की सीमान्त उपयोगिता के बराबर द्रव्य-मूल्य पर ही बेचा जा सकता है।

विक्रेता एकाधिकार की स्थिति में अधिकतम एकाधिकार के सिद्धान्त

के अनुसार व्यवहार करता है। उसे आय को अधिकतम करने की चिन्ता होती है, सारा माल बिक पायेगा अथवा नहीं, उसे इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं होती।

किन्तु, अति अल्प-काल में पुनरुत्पादन-योग्य वस्तुओं का मूल्य भी इन्हीं सिद्धान्तों द्वारा निर्धारित होता है क्योंकि अति अल्प-काल में उनकी पूर्ति भी सीमित ही होती है।

प्रश्न २१.—विनिमय-रहित आर्थिक व्यवस्था में मूल्य सिद्धान्त का क्या महत्त्व होगा ?

उत्तर.—आज के अर्थशास्त्र के अनुसार मूल्य-सिद्धान्त विनिमयता पर आधारित है। किसी वस्तु का मूल्य दूसरी वस्तु से ही मापा जाता है। आजकल की आर्थिक व्यवस्था विशेषतः विनिमय पर आधारित है। हम अपनी आवश्यकताओं को विनिमय द्वारा ही सन्तुष्ट करते हैं। इसी कारण से आज अर्थशास्त्र में विनिमय अनुपात अथवा विनिमय सिद्धान्त का इतना अधिक महत्त्व है।

विनिमय रहित आर्थिक व्यवस्था आज की व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न होगी। व्यक्ति आत्म-निर्भर होंगे। व्यक्तियों में पारस्परिक आर्थिक सम्बन्ध नहीं होगा। अतः जिस प्रकार हम मूल्य को आज समझते हैं वह व्यर्थ और महत्वहीन होगा।

प्रश्न २२.—मूल्य के भिन्न सिद्धान्तों को स्पष्ट करो।

उत्तर—पहले हम मूल्य का उपयोगिता सिद्धान्त और उत्पादन लागत सिद्धान्त स्पष्ट करेंगे। यह मूल्य का वर्त्तमान सिद्धान्त है। यह सब मूल्य सिद्धान्तों से अधिक सन्तोषप्रद समझा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मूल्य उपयोगिता और न्यूनता दोनों पर निर्भर है; न्यूनता का अर्थ पुनरुत्पादन लागत से है। इस सिद्धान्त के अनुसार पुनरुत्पादन-योग्य वस्तुओं का मूल्य सीमान्त उपयोगिता और उत्पादन लागत की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा निर्धारित होता है। किसी भी अनुपयोगी वस्तु की किसी को आवश्यकता नहीं होती, अतः अनुपयोगी वस्तु के बदले में उपयोगी वस्तु का प्राप्त करना

असम्भव ही है; इसीलिए विनिमय में उपयोगिता की बहुत महत्ता है। परन्तु उत्पादन लागत का महत्त्व भी उपयोगिता जैसा ही है। वह वस्तु जो बिना लागत के उत्पादित की जा सकती है उसे प्राप्त करने के लिए बदले में किसी वस्तु का देना आवश्यक नहीं है क्योंकि ऐसी वस्तु का उत्पादन तो प्रत्येक व्यक्ति कर सकता है। इस प्रकार उपयोगिता और न्यूनता मूल्य सिद्धान्त के दो अङ्ग हैं। वस्तु की उपयोगिता जितनी अधिक होगी मूल्य भी उतना ही अधिक होगा; उपयोगिता जितनी कम होगी मूल्य भी उतना ही कम होगा। अधिक लागत वाली वस्तु का मूल्य अधिक और कम लागत वाली वस्तु का मूल्य कम होगा।

किन्तु पुराने अर्थशास्त्रियों ने न्यूनता और उपयोगिता को उचित स्थान नहीं दिया जिसके कारण मूल्य के बहुत से सिद्धान्त बनाए गये। जिन्होंने उपयोगिता को अधिक महत्त्व दिया उन्होंने मूल्य का उपयोगिता सिद्धान्त और जिन्होंने न्यूनता को अधिक महत्त्व दिया उन्होंने मूल्य का न्यूनता सिद्धान्त अथवा उत्पादन लागत सिद्धान्त बनाया।

उपयोगिता सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार मूल्य का एकमात्र कारण उपयोगिता है और उसी के द्वारा मूल्य निर्धारित होता है। यह तो सत्य है कि बिना उपयोगिता के किसी वस्तु का मूल्य नहीं हो सकता किन्तु यह कहना अनुचित है कि मूल्य केवल उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। मूल्य के लिए उपयोगिता के साथ-साथ न्यूनता भी आवश्यक है। यह सत्य है कि प्रत्येक वस्तु को प्राप्त करने के लिए कुछ न कुछ परिश्रम अवश्य ही करना पड़ता है, किन्तु इससे न्यूनता की महत्ता कम नहीं होती। न्यूनता की मात्रा और वस्तु प्राप्त करने के लिए परिश्रम की मात्रा में घट-बढ़ से मूल्य भी घट-बढ़ जाता है।

न्यूनता सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार मूल्य केवल न्यूनता द्वारा निर्धारित होता है; किन्तु यह भी तर्कपूर्ण नहीं है। यह सिद्धान्त केवल पूर्ति पर विचार करता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि बिना उपयोगिता के मूल्य नहीं हो सकता। उपयोगिता मूल्य के लिए आवश्यक शर्त है। यदि

पूर्ति स्थिर रहे तो उपयोगिता परिवर्तन से मूल्य अवश्य ही बदल जाये। यह सत्य है कि प्रत्येक वस्तु किसी न किसी के लिए उपयोगी होती है। परन्तु इसके कारण हम उपयोगिता का महत्त्व कम नहीं कर सकते। यह बिलकुल निश्चित है कि यदि कोई वस्तु सबके लिए अनुपयोगी है तो इसके बदले में कोई व्यक्ति भी कोई भी उपयोगी वस्तु नहीं दे सकता।

सीमान्त उपयोगिता सिद्धान्त—यह उपयोगिता सिद्धान्त का मार्जित रूप है। इसकी विशेषता यह है कि यह मूल्य निर्धारण में सीमान्त उपयोगिता पर विशेष ज़ोर देता है। यह सत्य है कि स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है। यदि किसी व्यक्ति को पूरी मात्रा के लिए एक ही मूल्य देना पड़ता है तो यह आवश्यक है कि मूल्य अन्तिम इकाई की उपयोगिता से अधिक न हो। क्योंकि अन्तिम इकाई की उपयोगिता सीमान्त उपयोगिता होती है अतः यह कहना उचित ही है कि मूल्य सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है।

किन्तु यह सिद्धान्त केवल माँग पर विचार करता है जबकि मूल्य निर्धारण में माँग और पूर्ति दोनों का बराबर महत्त्व है। इस सिद्धान्त के पक्ष में यह कहा जा सकता है कि उत्पादन लागत भी किसी न किसी वस्तु की सीमान्त उपयोगिता ही होती है। परन्तु इस तर्क से भी यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि मूल्य केवल सीमान्त उपयोगिता पर निर्भर होता है।

पुनरुत्पादन-लागत सिद्धान्त—इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वस्तु की न्यूनता इसलिए नहीं होती कि इसके उत्पादन में कुछ लागत लगी है, किन्तु इसलिए होती है कि पुनरुत्पादन में लागत लगती है। इस सिद्धान्त का महत्त्व केवल इतना ही है कि यह हमें ज्ञात कराता है कि न्यूनता का कारण पूर्ति बढ़ाने की कठिनाई है। किन्तु फिर भी लागत तो केवल मूल्य निर्धारण का एक ही पहलू है।

श्रम-लागत सिद्धान्त.—इस सिद्धान्त के अनुसार मूल्य केवल श्रम-लागत के कारण होता है। यह लागत सिद्धान्त का संकुचित रूप है अतः यह लागत सिद्धान्त से भी अधिक संकुचित है। श्रम तो लागत का केवल एक ही भाग है। उत्पादन में बहुत प्रकार के प्रयत्न करने पड़ते हैं। लागत-सिद्धान्त के अनुसार यह भी उपयोगिता को स्थान नहीं देता।

प्रकरण ४

द्रव्य-मूल्य का निर्धारण

प्रश्न २३—वास्तविक उत्पादन-लागत, द्रव्य-लागत और उत्पादन व्यय से क्या समझते हो? विनिमय सिद्धान्त के अध्ययन में इन तीनों में किसका महत्त्व सब से अधिक है?

उत्तर—वास्तविक उत्पादन-मूल्य.—जब साहसी किसी वस्तु का उत्पादन करता है तो उसे उसके उत्पादन साधनों को नके परिश्रम के लिए अदायगी करनी पड़ती है। इनमें से कुछ उत्पादन साधन उसके स्वयं के भी हो सकते हैं। उत्पादन में लगे सभी उत्पादन के साधनों—श्रम, पूँजी, साहस और संगठन का व्यय मिलकर उत्पादन-लागत कहलाता है। उत्पादन-लागत उत्पादन-व्यय और द्रव्य-लागत दोनों से अधिक विस्तृत है। उत्पादन-लागत में उत्पादन में लगे सब प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष मनुष्यों का त्याग सम्मिलित रहता है अतः उत्पादन-लागत द्रव्य में नहीं आंकी जाती। किन्तु क्योंकि दीर्घ काल में द्रव्य-मूल्य लागत के बराबर होता है अतः यह कहना ठीक ही होगा कि लागत द्रव्य-मूल्य के बराबर होती है। वस्तु का द्रव्य-मूल्य द्रव्य रूप में कुल लागत को सूचित करता है।

इस प्रकार लागत एक बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है। विनिमय सिद्धान्त के अध्ययन में, जिसमें हम क्रय-विक्रय का अध्ययन करते हैं, लागत सबसे अधिक महत्त्व का विषय बन जाता है। वस्तु का विनिमय-मूल्य उत्पादन लागत के बराबर होना चाहिए क्योंकि द्रव्य-मूल्य द्वारा उत्पादक अथवा साहसी को उसके परिश्रमों का उचित फल मिलना चाहिए।

द्रव्य-लागत.—द्रव्य-लागत वास्तविक लागत का द्रव्य माप है। अतः द्रव्य-मूल्य द्रव्य-लागत कहा जा सकता है। किन्तु अर्थशास्त्र में द्रव्य-लागत

का विशेष महत्त्व नहीं है क्योंकि वास्तविक लागत, उत्पादन व्यय और द्रव्य-मूल्य की ही सहायता से अर्थशास्त्र के अधिकतर सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण हो जाता है। द्रव्य लागत और वास्तविक लागत में केवल इतना अन्तर है कि द्रव्य लागत व्यावहारिक एवं भौतिक वस्तु है जब कि वास्तविक लागत मानसिक एवं अभौतिक।

कभी-कभी उत्पादन व्यय के स्थान पर द्रव्य लागत का प्रयोग किया जाता है। किन्तु विचारों की स्पष्टता के लिए यह प्रयोग उचित नहीं है।

उत्पादन व्यय.—उत्पादन व्यय लागत का वह भाग है जो प्रत्यक्ष रूप से द्रव्य के रूप में लगता है। उत्पादन के साधकों को द्रव्य अदायगी ही उत्पादन व्यय है। इस प्रकार यह तो स्पष्ट ही है कि उत्पादन व्यय उत्पादन लागत से कम होता है इसलिए संस्थिति में द्रव्य-मूल्य उत्पादन व्यय के बराबर नहीं हो सकता।

इसी कारण से विनिमय अध्ययन में उत्पादन व्यय का अधिक महत्त्व नहीं है। फिर भी अल्प-काल में उत्पादक अपने परिश्रमों की लागत छोड़कर भी अर्थात् केवल उत्पादन व्यय पर वस्तु बेच सकता है। द्रव्य-मूल्य किसी भी स्थिति में कम से कम उत्पादन व्यय के बराबर तो होना ही चाहिए।

प्रश्न २४.—सीमान्त उत्पादन लागत का क्या अर्थ है? सीमान्त और असीमान्त फर्म के प्रसंग में इसका स्पष्टीकरण करो।

उत्तर.—सीमान्त उत्पादन लागत अन्तिम इकाई के उत्पादन की लागत कहलाती है। अन्तिम इकाई का तात्पर्य फर्म अथवा उद्योग की अन्तिम इकाई से हो सकता है। इस प्रकार सीमान्त उत्पादन लागत की निम्न प्रकारों से व्याख्या हो सकती है।

१. इसका अर्थ सीमान्त फर्म अर्थात् सब से कम कार्य-कुशल फर्म की उत्पादन लागत से हो सकता है। फर्म की कार्य-कुशलता साधनों की कार्य-कुशलता और उत्पादन मात्रा पर निर्भर होती है। जो फ़र्म एक या अनेक अकुशल साधनों का उपयोग करती है अथवा अनुकूलतम मात्रा का उत्पादन

नहीं करती उसका उत्पादन मूल्य अधिक होता है और वह अकुशल फ़र्म कहलाती है।

२. इसका तात्पर्य किसी कुशल एवं अकुशल फ़र्म के उत्पादन की अन्तिम इकाई से भी हो सकता है। जब फ़र्म उत्पादन को एक इकाई बढ़ाती है तो इसके उत्पादन में कुछ अतिरिक्त व्यय होता है। इस प्रकार अतिरिक्त व्यय सीमान्त लागत अर्थात् अन्तिम इकाई के उत्पादन की लागत कहलाता है।

३. इसका तात्पर्य उद्योग के अन्तिम इकाई उत्पादन से भी हो सकता है। जब उद्योग का उत्पादन एक इकाई बढ़ाया जाता है तो कुछ लागत भी बढ़ती है। यह अतिरिक्त लागत उद्योग की सीमान्त उत्पादन लागत कहलाती है। उद्योग की सीमान्त लागत और फ़र्म की सीमान्त लागत में निम्न कारणों से भेद किया जाता है। जब एक फ़र्म एक इकाई उत्पादन बढ़ाती है तो अन्य फ़र्मों की कार्य-कुशलता और उत्पादन लागत में परिवर्तन सम्भव होता है। किन्तु यदि किसी फ़र्म की उत्पादन लागत बढ़े तो सदैव यह आवश्यक नहीं है कि उद्योग की उत्पादन लागत भी बढ़े। यदि किसी एक फ़र्म की उत्पादन लागत बढ़ने से शेष फ़र्मों की कार्य-कुशलता में ऐसा परिवर्तन हो कि उनकी लागत उतनी ही घट जाय तो उद्योग की लागत स्थिर रह सकती है।

फ़र्म की सीमान्त उत्पादन लागत केवल एक फ़र्म की लागत पर विचार करती है। जबकि उद्योग को लागत उद्योग की सब फ़र्मों की सामूहिक लागत पर विचार करती है। कभी-कभी फ़र्म और उद्योग की सीमान्त लागत को स्पष्ट करने की दृष्टि से फ़र्म की सीमान्त उत्पादन लागत को निजी या आन्तरिक सीमान्त उत्पादन लागत भी कहते हैं।

अब हमें विचार करना है कि सीमान्त फ़र्म की उत्पादन लागत और फ़र्म की सीमान्त उत्पादन लागत में कोई अन्तर है अथवा नहीं? जब बाज़ार में स्पर्द्धा होती है तो सब फ़र्मों की पूर्ण मात्रा का एक ही मूल्य होता है जिसके कारण कुशल एवं अकुशल सब फ़र्मों को एक ही द्रव्य-मूल्य प्राप्त होता है। ऐसी स्थिति में सीमान्त फ़र्म को केवल उत्पादन लागत के बराबर दाम मिलते हैं; किन्तु शेष सब फ़र्मों को उत्पादन लागत से अधिक दाम मिलते हैं अतः

उन्हें लाभ होता है। क्योंकि सीमान्त फ़र्म हानि पर नहीं बेच सकती इसलिए सीमान्त उत्पादन लागत मुद्रा-मूल्य से अधिक नहीं हो सकती। यदि सीमान्त फ़र्म को लाभ होती है तो लाभ के लोभ से फ़र्मों की संख्या और उत्पादन मात्रा बढ़ जाती है जिसके कारण द्रव्य-मूल्य भी कम हो जाता है और अन्त में सीमान्त उत्पादन लागत के बराबर आ जाता है। यही संस्थिति होती है। संस्थिति में सीमान्त फ़र्म की उत्पादन लागत और द्रव्य-मूल्य का बराबर होना अनिवार्य है।

(तर्क से यह सिद्ध किया जा सकता है कि यदि स्वतन्त्र स्पर्द्धा वर्त्तमान है और साधन विभाजनशील और गतिशील हैं तो सीमान्त फ़र्म का उत्पादन केवल एक इकाई होगा और सीमान्त उत्पादक को उत्पादन लागत से अधिक दाम नहीं मिलेंगे।)

जिन फ़र्मों की कार्यकुशलता सीमान्त फ़र्म से अधिक होती है उनकी उत्पादन लागत कम होती है जिसके कारण बाज़ार भाव पर बेचने पर भी उन्हें लाभ होता है। लाभ को अधिकतम करने की दृष्टि से फ़र्में अपना उत्पादन तब तक बढ़ाती रहती हैं जब तक उनकी सीमान्त उत्पादन लागत बाज़ार भाव के बराबर न हो जाये। अतः अन्त में सब फ़र्मों की लागत बाज़ार भाव के बराबर होती है।

अब हम कह सकते हैं कि स्वतन्त्र स्पर्द्धा की स्थिति में द्रव्य-मूल्य प्रत्येक फ़र्म की सीमान्त लागत और सीमान्त फ़र्म की लागत दोनों ही के बराबर होता है और इस स्थिति में बाज़ार भाव पर पूर्ति और माँग भी बराबर होती हैं। माँग और पूर्ति के परिवर्तन से संस्थिति भंग हो जाती है। उदाहरण के लिए माँग के बढ़ने से मूल्य बढ़ जाता है जिसके कारण सीमान्त फ़र्म को भी लाभ होने लगता है। इस प्रकार द्रव्य-मूल्य और उत्पादन लागत में अन्तर हो जाता है। यह अन्तर उस समय तक रहता है जब तक उद्योग में लाभ देखकर नई फ़र्में उत्पादन प्रारम्भ न कर दें।

प्रश्न २५—प्रोफ़ेसर मार्शल की प्रतिनिधि फ़र्म क्या है? प्रतिनिधि फ़र्म की उत्पादन लागत का सामान्य मूल्य के निर्धारण में क्या स्थान है?

उत्तर—प्रोफ़ेसर मार्शल के कथनानुसार प्रतिनिधि फ़र्म ऐसी फ़र्म है जिसे कार्य करते काफ़ी समय हो गया हो; जिसे साधारण सफलता प्राप्त हुई हो; जिसका प्रबन्ध योग्य व्यक्ति द्वारा होता हो और जो साधारणतः सभी प्रकार की आन्तरिक एवं बाह्य मितव्ययिताओं का लाभ उठा सके और जिसकी उत्पादन मात्रा उस उद्योग और बाज़ार के अनुसार साधारण हो। इससे यह स्पष्ट है कि मार्शल का तात्पर्य औसत फ़र्म से है। किन्तु, जैसा मार्शल ने स्वयं ही कहा है प्रतिनिधि फ़र्म प्रत्येक दृष्टि से औसत फ़र्म नहीं होती। किन्तु हमारी दृष्टि से तो यह औसत फ़र्म ही है क्योंकि हमें सामान्य मूल्य पर विचार करना है। साधारण योग्यता और साधारण उपलब्धता इत्यादि शब्दों का प्रयोग भी औसत फ़र्म की ओर ही संकेत करता है।

प्रत्येक उद्योग की परिवर्त्तित दशा के कारण प्रत्येक समय कुछ फ़र्में बन्द होती रहती हैं; कुछ नई क्षेत्र में आती रहती हैं और कुछ अपना अस्तित्व स्थापित करने के लिए प्रयत्न करती रहती हैं। फ़र्म की प्रारम्भिक स्थिति में उत्पादन लागत अधिक होती है किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है और फ़र्म परिपक्व होती जाती है वैसे-वैसे उत्पादन लागत घटती जाती है। परन्तु परिपक्व होने के बाद अर्थात् पूर्ण सफलता प्राप्त करने के बाद प्रत्येक भौतिक वस्तु के अनुसार इसे भी प्रौढ़ अवस्था प्राप्त होने लगती है। कार्य-कुशलता घटने लगती है और उत्पादन लागत बढ़ने लगती है। पतन-काल प्रारम्भ हो जाता है। जैसे ही पुरानी और पतित फ़र्मों का नाश होता है वैसे ही अपरिपक्व और नई फर्में उनका स्थान ले लेती हैं। प्रतिनिधि फ़र्म को समझने के लिए अर्थशास्त्र की गत्यात्मक (या प्रवैगिक) दशा का ज्ञान आवश्यक है।

जैसा हमें ज्ञात है सामान्य मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है। ऐसा कहते समय यह मान लिया जाता है कि उद्योग के सब उत्पादकों की औसत लागत बराबर है। वास्तव में स्थिर स्थिति में सब फ़र्मों की औसत लागत अवश्य ही बराबर होती है। गत्यात्मक दशा में भी लागत की प्रवृत्ति बराबर होने की ही रहती है। किन्तु जब सब फ़र्मों की उत्पादन लागत बराबर

नहीं होती तो प्रश्न उठता है कि द्रव्य-मूल्य किस फ़र्म की लागत द्वारा निर्धारित होता है ? इसका उत्तर केवल यही है कि मूल्य-निर्धारण प्रतिनिधि फ़र्म की लागत से होता है जिसके कारण इसका महत्त्व का स्थान है। अपरिपक्व फ़र्में भविष्य में उत्पादन लागत में कमी होने की आशा से वर्त्तमान में उत्पादन लागत से कम द्रव्य-मूल्य पर माल बेचती हैं। प्रौढ़ फ़र्में भी लागत से कम मूल्य पर बेचने को विवश हो जाती हैं क्योंकि उत्पादन साधन आसानी और शीघ्रता से दूसरे उद्योग में लगाना सम्भव नहीं होता। इस कारणवश प्रतिनिधि फ़र्म की उत्पादन लागत से ही सामान्य मूल्य निर्धारित होता है।

प्रश्न २६—उद्योग अथवा फ़र्म के पूर्ति मूल्य का क्या अर्थ है ? उत्पादन लागत से इसका कोई सम्बन्ध है अथवा नहीं ?

उत्तर—जिस मूल्य पर फ़र्म अथवा उद्योग अपना माल बेचना चाहता है वही फ़र्म अथवा उद्योग का पूर्ति मूल्य कहलाता है। वास्तव में माँग की मात्रा और माल बेचने की इच्छा में परिवर्तन होने से पूर्ति मूल्य में भी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार भिन्न-भिन्न मात्रा के लिए भिन्न-भिन्न पूर्ति मूल्य होते हैं। साधारणतः जब माँग अधिक होती है तो पूर्ति मूल्य भी अधिक होता है। माँग कम हो जाने से बिक्री मूल्य और पूर्ति मूल्य घटाना पड़ता है। जिस प्रकार निश्चित पूर्ति के लिए कुछ निश्चित माँग मूल्य होता है उसी प्रकार निश्चित माँग के लिए निश्चित पूर्ति मूल्य भी होता है।

दीर्घ काल में पूर्ति मूल्य उत्पादन लागत के बराबर होता है क्योंकि लागत से कम मूल्य पर उत्पादकों को घाटा होता है। किन्तु दीर्घ काल तक घाटे की स्थिति में उत्पादन सम्भव नहीं होता। घाटे को देखकर कुछ उत्पादक उत्पादन बिल्कुल बन्द कर देते हैं और कुछ कम कर देते हैं जिससे आगे उत्पादन मात्रा और पूर्ति में कमी हो जाती है। उत्पादन मात्रा घटने से माँग स्थिर रहने की स्थिति में मूल्य बढ़ जाता है। इसी प्रकार यदि पूर्ति मूल्य लागत से अधिक होता है तो उत्पादकों को लाभ होता है। लाभ के कारण पुराने उत्पादक उत्पादन मात्रा बढ़ा देते हैं और कुछ नये उत्पादक भी उत्पादन प्रारम्भ कर देते हैं। उत्पादन मात्रा बढ़ जाती है। पूर्ति बढ़ने से ग्राहक

कम मूल्य देना चाहते है अर्थात् माँग मूल्य घट जाता है जिससे भाव गिर जाता है।

ऊपर के विवरण से यह तो स्पष्ट है कि दीर्घ काल में पूर्ति मूल्य औसत उत्पादन लागत के बराबर होना चाहिए। लागत में सब साधनों—श्रम की मज़दूरी, पूंजी का ब्याज, भूमि का लगान, संगठनकर्ता का वेतन और साहसी का बीमा व्यय शामिल होना चाहिए, अर्थात् मूल्य वास्तविक उत्पादन लागत के बराबर होना चाहिए, केवल उत्पादन व्यय के नहीं। इस प्रकार की लागत में सामान्य लाभ भी शामिल रहता है। सामान्य लाभ साहसी के परिश्रम का फल होता है और इसमें अतिरिक्त लाभ शामिल नहीं रहता।

यद्यपि सामान्य पूर्ति मूल्य औसत उत्पादन लागत के बराबर होना चाहिए किन्तु वैसे पूर्ति मूल्य इससे बहुत भिन्न हो सकता है। अल्प-काल में पूर्ति स्थिर होती है, केवल माँग के परिवर्तन से ही पूर्ति मूल्य परिवर्तित होता है अर्थात् अल्प-काल में पूर्ति-मूल्य माँग-मूल्य के बराबर होता है।

ऊपर पूर्ति-मूल्य से हमारा तात्पर्य ऐसे मूल्य से है जिस पर उत्पादक प्रसन्नता से बेचने को तैयार रहते हैं। किन्तु बहुधा पूर्ति-मूल्य ऐसा न्यूनतम मूल्य समझा जाता है जिस पर उत्पादक बेचने की इच्छा प्रगट करते हैं।

प्रश्न २७—यदि पूर्ति बढ़ाना सम्भव नहीं हो तो बाज़ार भाव किस प्रकार निश्चित हो?

उत्तर—मूल्य सिद्धान्त का अध्ययन करते समय हम यह कह चुके हैं कि मूल्य सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त लागत द्वारा निश्चित होता है। द्रव्य-मूल्य द्रव्य के रूप में मूल्य होने के कारण ठीक उसी प्रकार निश्चित होता है जिस प्रकार मूल्य। सीमित पूर्ति वाली वस्तुओं अर्थात् ऐसी वस्तुएँ जिनकी मात्रा बढ़ाना सम्भर्व नहीं है उनका मूल्य पुनरुत्पादन-अयोग्य वस्तुओं के मूल्य के समान ही निश्चित होता है।

दीर्घ-काल और अल्प-काल में मूल्य लगभग एक ही सिद्धान्त द्वारा निर्धारित होता है। संसार की गत्यात्मक स्थिति के कारण ही दीर्घकालीन और अल्पकालीन मूल्य में अन्तर होता है। यदि जैसे ही आर्थिक दशा में

एक ओर परिवर्तन हो, ठीक उसी प्रकार उतना ही परिवर्तन दूसरी ओर भी हो जाय तो सदैव संतुलन की स्थिति रहे जिससे मूल्य स्थिर हो जाए। परन्तु अनेक कारणों से अल्प-काल में इस प्रकार का संतुलन सम्भव नहीं है। सीमित पूर्ति इनमें से एक मुख्य कारण है।

यदि दीर्घ एवं अल्प सभी कालों में पूर्ति बढ़ाना असम्भव होता है तो स्टाक बिल्कुल सीमित होता है जिसके कारण मूल्य माँग की तीव्रता द्वारा निर्धारित होता है। ऐसी स्थिति में पूर्ति तो अकर्मण्य हो ही जाती है। अतः यदि माँग अधिक होती है तो मूल्य अधिक होता है और माँग कम होती है तो मूल्य भी कम होता है। मूल्य एकाधिकार मूल्य-सिद्धान्त के अनुसार ही निर्धारित होता है। विक्रेता अधिकतम आय प्राप्त करने के उद्देश्य से अधिकतम सम्भव मूल्य लेंगे। ऐसी स्थिति में यह भी सम्भव है कि माँग मूल्य बढ़ाने के हेतु कुछ माल नष्ट कर दिया जाय अथवा स्टाक कर लिया जाए।

इस प्रसंग में बिगड़ने वाली और न बिगड़ने वाली वस्तुओं का अन्तर समझना भी परम आवश्यक है। बिगड़ने वाली वस्तुएँ भविष्य के लिए स्टाक नहीं की जा सकतीं, अतः उनका मूल्य निर्धारण केवल वर्तमान माँग की तीव्रता पर निर्भर होता है। परन्तु जब वस्तु (जैसे लोहा, कपड़ा इत्यादि) अधिक समय तक स्टाक की जा सकती है तो विक्रेता भविष्य की माँग पर भी विचार करते हैं। इसके कारण वर्त्तमान मूल्य विक्रेताओं के भविष्य माँग अनुमान से भी प्रभावित होता है। यदि भविष्य में माँग बढ़ने की आशा होती है तो विक्रेता माल रोकने की चेष्टा करते हैं जिससे मूल्य बढ़ जाता है।

ऊपर के तर्क में यह मान लिया गया है कि वस्तु के स्टाक की मात्रा बढ़ाना सम्भव नहीं है। किन्तु, यदि वस्तु पुनरुत्पादन-योग्य है तो भविष्य में उत्पादन बढ़ाना सम्भव होता है। ऐसी स्थिति में वर्त्तमान मूल्य भविष्य की पूर्ति और माँग दोनों द्वारा प्रभावित होगा। यदि भविष्य में उत्पादन बढ़ने की सम्भावना होती है तो विक्रेता भविष्य में दाम गिरने के भय से माल रोकने की चेष्टा नहीं करते जिससे वर्त्तमान मूल्य में कमी हो जाती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि दिन-प्रति-दिन का मूल्य अर्थात् अल्प-

कालीन मूल्य विशेषतः माँग द्वारा निर्धारित होता है और बिगड़ने वाली वस्तुओं का केवल वर्त्तमान माँग से। पूर्ति का बढ़ना जितना ही कम सम्भव होता है मूल्य निर्धारण में पूर्ति का उतना ही कम स्थान होता है।

प्रश्न २८.—बाज़ार मूल्य क्या है? सामान्य मूल्य और बाज़ार मूल्य में क्या अन्तर है?

उत्तर—जिस मूल्य पर विनिमय होता है वही बाज़ार मूल्य कहलाता है। बाज़ार मूल्य किसी समय अथवा किसी दिन का वास्तविक मूल्य है। यह माँग और पूर्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा निर्धारित होता है। माँग अथवा पूर्ति की मात्रा में अचानक परिवर्तन से बाज़ार भाव में परिवर्तन होना अनिवार्य है। किन्तु साधारणतः माँग में अचानक परिवर्तन पूर्ति में अचानक परिवर्तन से अधिक सम्भव होता है। इसी कारण दिन-प्रति-दिन की मूल्य की घटा-बढ़ी विशेषकर माँग की घटा-बढ़ी के कारण होती है। पूर्ति में परिवर्तन धीरे-धीरे होता है; अल्प-काल में तो यह स्थिर ही होती है। इसीलिए यह कहा जाता है कि बाज़ार भाव उत्पादन लागत से अधिक सीमान्त उपयोगिता से प्रभावित होता है।

सामान्य मूल्य वास्तविक मूल्य नहीं है। यह एक प्रकार की सैद्धान्तिक कल्पना है। हम कह सकते हैं कि बाज़ार मूल्य की प्रवृत्ति सामान्य मूल्य की ओर होती है। सामान्य मूल्य एक प्रकार से बाज़ार भावों का औसत है। जब माँग में अचानक परिवर्तन के कारण मूल्य में परिवर्तन होने लगता है तो उत्पादन लागत का परिवर्तन धीरे-धीरे मूल्य को पुनः सामान्यता की ओर लाता है। यदि आर्थिक स्थिति स्थिर रहे तो सामान्य मूल्य और बाज़ार मूल्य में कोई अन्तर नहीं हो, सदैव ही दोनों बराबर हों। प्रोफ़ैसर मार्शल का कथन है कि सामान्य अथवा प्राकृतिक मूल्य वह मूल्य है जो काफ़ी दीर्घ-काल तक आर्थिक दशाओं के स्थिर रहने और उनके पूरे प्रभाव के कारण स्थापित होता है।

इस प्रकार सामान्य-मूल्य, वास्तविक मूल्य नहीं है क्योंकि सदैव ही यह बाज़ार मूल्य से भिन्न रहता है। प्रोफ़ेसर एली का मत है कि बाज़ार मूल्य को सामान्य मूल्य के बराबर लाने वाली शक्तियाँ न केवल धीरे-धीरे कार्य करती हैं

किन्तु ठीक रूप से भी कार्य नहीं करतीं। बाज़ार भाव सदैव ही अल्पकालीन माँग और पूर्ति से प्रभावित रहता है।

निष्कर्ष में हम कह सकते हैं कि बाज़ार मूल्य दिन-प्रति-दिन का वास्तविक मूल्य है। यह बिलकुल सम्भव है कि माँग के दिन-प्रति-दिन के परिवर्तनों के कारण यह सदैव ही सामान्य मूल्य अथवा उत्पादन लागत से भिन्न रहे। किन्तु पूर्ति के धीरे-धीरे परिवर्तन के प्रभाव के कारण बाज़ार मूल्य की प्रवृत्ति सामान्य मूल्य के निकट आने की रहती है।

प्रश्न २९—अल्पकालीन और दीर्घकालीन सामान्य मूल्य से क्या समझते हो? इनका निर्धारण किस प्रकार होता है?

उत्तर—आर्थिक शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया से जिस भाव की आशा की जाती है वही सामान्य अथवा प्राकृतिक भाव होता है। यह अप्राकृतिक अथवा असामान्य अर्थात् बाज़ार भाव से भिन्न होता है। सामान्य भाव का सम्बन्ध किसी समय काल से होता है। सामान्य भाव क्षणिक भाव नहीं होता किन्तु यह कुछ समय तक स्थिर रहता है। इसका निर्धारण समय की माँग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा होता है। यह दिन-प्रति-दिन का भाव नहीं होता किन्तु दिन-प्रति-दिन के भाव की प्रवृत्ति इसके निकट आने की रहती है। यह तो सत्य ही है कि दिन-प्रति-दिन का भाव अस्थायी शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है किन्तु फिर भी इसकी प्रवृत्ति एक स्तर पर पहुँचने की रहती ही है। जैसा कि हम अध्ययन कर चुके हैं सामान्य मूल्य उत्पादन लागत और सीमान्त उपयोगिता दोनों के बराबर होता है। यह भी कहा जा सकता है कि माँग और पूर्ति की शक्तियों का पूर्ण प्रभाव समाप्त होने पर जो मूल्य अथवा भाव होता है वही सामान्य भाव होता है।

दीर्घकालीन सामान्य मूल्य दीर्घकालीन माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है अर्थात् यह दीर्घकालीन माँग और पूर्ति की शक्तियों पर विचार करता है।

किन्तु अल्पकालीन सामान्य मूल्य मूल्यों को प्रभावित करने वाली अल्प-

कालीन शक्तियों का विचार करता है। यह अल्पकालीन माँग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है।

दीर्घकालीन एवं अल्पकालीन दोनों ही भाव माँग और पूर्ति की बहुत-सी शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया से निर्धारित होते हैं। दीर्घकाल में तो सब शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया समाप्त हो जाती है। किन्तु अल्प-काल में कुछ शक्तियों की पूर्णता हो पाती है और कुछ की नहीं। अतः अल्पकालीन भाव केवल कुछ ही शक्तियों की क्रिया-प्रतिक्रिया से निर्धारित होता है। पूर्ति की शक्तियों का प्रभाव माँग के प्रभाव की तुलना में धीरे-धीरे होता है। किन्तु दीर्घ-काल में तो सबको अपना प्रभाव दिखाने का अवसर मिल जाता है अतः मूल्य सीमान्त लागत के बराबर होता है। परन्तु अल्प-काल में पूर्ति की कुछ शक्तियाँ अपना पूरा प्रभाव नहीं दिखा पातीं; उदाहरण के लिए अल्प-काल में लाभ के साथ पूर्ति घटाना बढ़ाना यदि असम्भव नहीं तो कठिन तो अवश्य ही है। अल्प-काल में यदि पूर्ति बढ़ानी है तो वर्त्तमान साधनों का ही अधिक देर तक उपयोग किया जा सकता है किन्तु साधन बढ़ाये नहीं जा सकते। श्रम अथवा मशीन से अधिक काम लिया जा सकता है किन्तु श्रम अथवा मशीन की संख्या नहीं बढ़ाई जा सकती। परन्तु दीर्घ-काल में नये साधनों का उपयोग भी किया जा सकता है।

इसी कारण अल्पकालीन सामान्य मूल्य और दीर्घकालीन सामान्य मूल्य में अन्तर होता है। जब माँग में परिवर्तन होता है तो पूर्ति में परिवर्तन होना अनिवार्य है। किन्तु अल्प-काल में पूर्ति की कुछ ही शक्तियों में परिवर्तन हो पाता है सब में नहीं। उदाहरण के लिए जब माँग कम हो जाती है तो उत्पादन साधनों में तुरन्त कमी करना सम्भव नहीं होता। उच्च अधिकारी, स्थिर पूँजी और भूमि का एकाएक घटाना न सम्भव है और न लाभकर। ऐसी स्थिति में अल्प-काल में श्रमिकों की संख्या, कच्चे माल की खपत और कार्य करने के समय में कमी कर के ही उत्पादन घटाया जाता है। माँग घटने से लागत के अस्थिर (या परिवर्ती) तत्त्वों में ही कमी कर पूर्ति कम की जाती है; स्थिर तत्त्वों में कमी करना सम्भव नहीं होता। इसीलिए अल्पकालीन सामान्य

मूल्य अस्थिर तत्त्वों की लागत द्वारा निर्धारित होता है। अस्थिर तत्त्वों की लागत प्राथमिक लागत कहलाती है। अल्पकाल में मूल्य कम से कम प्राथमिक लागत के बराबर होना चाहिए, दीर्घ काल में पूर्ण लागत अर्थात् स्थिर एवं अस्थिर दोनों प्रकार की लागतों के योग के बराबर। अल्प-काल में प्राथमिक लागत मूल्य की न्यूनतम सीमा निर्धारित करती है किन्तु दीर्घ-काल में पूर्ण लागत मूल्य की न्यूनतम और अधिकतम दोनों ही सीमाएँ निर्धारित करती है।

प्रश्न ३०—स्पष्ट करो कि दीर्घ-काल में और अल्प-काल में वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण किस प्रकार होता है?

उत्तर—इस प्रश्न का उत्तर प्रश्न नम्बर २८ और २९ एवं मूल्य के प्रश्नों के उत्तरों में मिलेगा। फिर भी संक्षेप में निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है :—

दीर्घ-काल में मूल्य माँग और पूर्ति की सब शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है अतः यह वस्तु की सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त लागत दोनों के बराबर होता है। सीमान्त उपयोगिता माँग की शक्ति है और सीमान्त उपयोगिता पूर्ति की। ग्राहक को मूल्य के बदले में कम से कम मूल्य के बराबर उपयोगिता मिलनी चाहिए और विक्रेता को कम से कम सीमान्त लागत के बराबर मूल्य मिलना चाहिए। जब मूल्य सीमान्त उपयोगिता से कम होता है तो माँग बढ़ जाती है और यदि अधिक होता है तो माँग घट जाती है। इसी प्रकार जब मूल्य सीमान्त उत्पादन से अधिक होता है तो पूर्ति बढ़ जाती है और कम होता है तो पूर्ति घट जाती है। इस प्रकार की घट-बढ़ से अन्त में मूल्य सीमान्त लागत और सीमान्त उपयोगिता दोनों के बराबर हो जाता है। इस प्रकार का मूल्य सब शक्तियों द्वारा निर्धारित होता है और यह दीर्घ-कालीन मूल्य कहलाता है।

किन्तु अल्प-काल में माँग में परिवर्तन के साथ-साथ पूर्ति में परिवर्तन नहीं होता जिससे असंतुलन हो जाता है। इस असन्तुलन के कारण अल्प-कालीन बाज़ार भाव दीर्घकालीन भाव से भिन्न हो सकता है। परन्तु यह

नहीं समझना चाहिए कि अल्प-काल में पूर्ति में तनिक भी परिवर्तन सम्भव नहीं है, पूर्ति कुछ न कुछ तो घटाई-बढ़ाई जा ही सकती है ; परन्तु फिर भी अधिक परिवर्तन सम्भव नहीं होता। उदाहरण के लिए स्थिर पूँजी, स्थायी उच्च पदाधिकारियों और इमारतों में परिवर्तन करना आसान नहीं होता, इसमें कठिनाइयाँ होती हैं और समय लगता है। माँग की कमी से इन परिवर्तनों की आवश्यकता पड़ती है किन्तु अल्प-काल में इनमें परिवर्तन करना असम्भव-सा ही होता है। अतः अल्पकालीन मूल्य पूर्ति के केवल ऐसे परिवर्तनों द्वारा प्रभावित होता है जिन्हें अधिक समय की आवश्यकता नहीं होती।

प्रश्न ३१—सिद्ध करो कि बाज़ार में स्पर्द्धा की स्थिति में वस्तु का सामान्य मूल्य माँग और पूर्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया अर्थात् सीमान्त लागत और सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित होता है।

उत्तर—सामान्य मूल्य दीर्घकालीन मूल्य है। इसको संतुलन मूल्य कहना भी उचित ही है। यह मूल्य न तो ग्राहक के लिए अत्यधिक और न विक्रेता के लिए अति न्यून होना चाहिए। यदि स्पर्द्धा है तो मूल्य अत्यधिक नहीं हो सकता। मूल्य बढ़ने से उत्पादकों की संख्या और उत्पादन मात्रा बढ़ जायेगी। उत्पादन उस समय तक बढ़ता रहेगा जब तक मूल्य घट कर उत्पादन लागत के बराबर न हो जाए। उत्पादन लागत के बराबर मूल्य होने के उपरान्त उत्पादकों को अधिक उत्पादन के लिये प्रेरणा देने वाले तत्त्व लाभ की समाप्ति हो जाती है जिसके कारण इस सीमा पर पहुँचकर उत्पादान मात्रा स्थिर हो जाती है। उत्पादन लागत के बराबर मूल्य पूर्ति के दृष्टिकोण से संस्थिति मूल्य होता है। संस्थिति मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत के बराबर होना चाहिए। क्योंकि उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ एक सीमा के बाद उत्पादन लागत बढ़ती जाती है अतः विक्रेता को हानि न हो इसके लिए यह आवश्यक है कि मूल्य प्रथम नहीं किन्तु अन्तिम इकाई की लागत के बराबर हो। यदि मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत के बराबर नहीं होता तो अन्तिम इकाई का उत्पादन नहीं हो सकता। अतः जब हम कहते हैं कि मूल्य लागत के बराबर होना चाहिए तो हमारा तात्पर्य होता है कि मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत

के बराबर होना चाहिए और जब स्पर्द्धा होती है तो मूल्य उत्पादन लागत से अधिक नहीं हो सकता।

अतः स्पर्द्धा की स्थिति में पूर्ति की शक्तियाँ मूल्य को उत्पादन लागत के बराबर निर्धारित करती हैं। परन्तु मूल्य केवल पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित नहीं होता। इसमें माँग का हाथ भी रहता है। जिस प्रकार यह आवश्यक है कि मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत से कम नहीं होना चाहिए उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि मूल्य सीमान्त उपयोगिता से अधिक नहीं होना चाहिए। ग्राहक द्रव्य को वस्तु से बदलता है। यदि उस वस्तु की उपयोगिता द्रव्य की उपयोगिता से कम है तो वह द्रव्य नहीं दे सकता क्योंकि इस प्रकार के विनिमय में उसे हानि होगी। इसका अर्थ यही है कि मूल्य वस्तु की उपयोगिता से अधिक नहीं हो सकता। जब किसी वस्तु की बहुत मात्रा विनिमय की जाती है तो प्रत्येक इकाई की उपयोगिता कम से कम मूल्य के बराबर होनी चाहिए। अन्तिम अर्थात् सीमान्त इकाई की उपयोगिता सब से कम होती है अतः मूल्य अधिक से अधिक अन्तिम इकाई की उपयोगिता के बराबर हो सकता है। परन्तु जब स्पर्द्धा होती है तो मूल्य इससे कम भी नहीं हो सकता क्योंकि यदि मूल्य सीमान्त उपयोगिता से कम होगा तो ग्राहकों की संख्या और प्रति ग्राहक क्रय मात्रा बढ़ जायेगी, जिसके कारण मूल्य भी बढ़ जायेगा। माँग और मूल्य उस समय तक बढ़ता रहेगा जब तक मूल्य सीमान्त उपयोगिता के बराबर नहीं हो जाता।

इस प्रकार माँग की शक्तियाँ भी मूल्य-निर्धारण पर प्रभाव डालती हैं, जिसके कारण मूल्य सीमान्त उपयोगिता से अधिक नहीं हो सकता।

इस प्रकार संस्थिति में मूल्य सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त लागत दोनों के बराबर होता है।

प्रश्न ३२.—"अल्पकाल में मूल्य-निर्धारण में सीमान्त उपयोगिता का और दीर्घ-काल में सीमान्त लागत का प्रमुख स्थान रहता है"। मार्शल के इस कथन पर विचार करो।

उत्तर—वैसे तो पिछले प्रश्नों का उत्तर देते हुए इस प्रश्न का उत्तर

दिया जा चुका है फिर भी संक्षेप में हम इसे निम्न प्रकार स्पष्ट कर सकते हैं :—

वैसे तो मूल्य निर्धारण में माँग और पूर्ति में परिवर्तन करने वाले सब तत्त्वों का हाथ रहता है क्योंकि माँग और पूर्ति के परिवर्तन से ही मूल्य परिवर्तन होता है। परन्तु प्रत्येक समय सब तत्त्वों का बराबर हाथ नहीं रहता, समय-विशेष पर माँग और पूर्ति में जो अधिक परिवर्तनशील होता है, मूल्य पर उसी का अधिक प्रभाव पड़ता है। माँग और पूर्ति के परिवर्तन ही मूल्य में परिवर्तन कर सकते हैं। यदि मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत से अधिक है तो यह तभी घट सकता है जब पूर्ति बढ़ जाये। यदि मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत से कम है तो यह पूर्ति घटने से ही बढ़ सकता है। माँग पर भी यही तर्क लागू होता है। इसलिए माँग और पूर्ति में जो अधिक परिवर्तनशील होती है मूल्य निर्धारण में उसी का प्रमुख स्थान रहता है। अल्प-काल में माँग सुगमता से घटाई-बढ़ाई जा सकती है। जब मूल्य सीमान्त उपयोगिता से अधिक होता है तो माँग शीघ्रता से कम हो जाती है और जब मूल्य सीमान्त उपयोगिता से कम होता है तो माँग शीघ्रता से बढ़ जाती है परन्तु अल्प-काल में पूर्ति में परिवर्त्तन करना कठिन होता है। इसीलिए यह कहा जाता है कि अल्प-काल में मूल्य निर्धारण में माँग का प्रमुख हाथ रहता है।

दीर्घ-काल में पूर्ति में परिवर्तन किया जा सकता है। पूर्ति घटाई-बढ़ाई जा सकती है जिसके कारण पूर्ति का मूल्य पर प्रभाव पड़ता है। क्योंकि दीर्घ-काल में मूल्य उत्पादन लागत से अधिक या कम नहीं हो सकता अतः मूल्य निर्धारण में उत्पादन लागत का हाथ रहता है।

प्रश्न ३३—'दीर्घ-काल में मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है' और 'मूल्य माँग और पूर्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया से निर्धारित होता है'। इन दो कथनों में कुछ मतभेद है अथवा नहीं ?

उत्तर—जैसा हम पहले कह चुके हैं दीर्घ-काल में मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है। क्योंकि सामान्य-मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत और सीमान्त उपयोगिता दोनों के बराबर होता है अतः यह कहना भी उचित ही

है कि मूल्य माँग और पूर्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया से निर्धारित होता है किन्तु यदि मूल्य पर माँग और पूर्ति दोनों का प्रभाव पड़ता है तो यह कैसे कहा जा सकता है कि मूल्य उत्पादन लागत के बराबर होता है अथवा उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है ?

यदि उत्पादन लागत और उपयोगिता दोनों ही स्थिर हों तो समस्या बहुत कठिन हो जाये। क्योंकि ऐसी स्थिति में यदि मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता हो तो यह सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित नहीं हो सकता। यदि दो वस्तुएँ आपस में बराबर नहीं है तो तीसरी वस्तु इन दोनों के बराबर नहीं हो सकती। परन्तु वास्तव में न तो उत्पादन लागत स्थिर होती है और न सीमान्त उपयोगिता। भिन्न-भिन्न उत्पादन मात्रा की लागत भी भिन्न-भिन्न होती है और भिन्न-भिन्न उपभोग मात्रा की सीमान्त उपयोगिता भी भिन्न-भिन्न होती है।

एक सीमा के बाद उत्पादन वृद्धि से सीमान्त उत्पादन लागत में भी वृद्धि हो जाती है और जैसे-जैसे बिक्री के लिए माल की मात्रा बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे सीमान्त उपयोगिता घटती जाती है। ऐसी स्थिति में यह सम्भव है कि एक स्थान पर सीमान्त लागत और सीमान्त उपयोगिता बराबर हो जायें।

जब माँग की तुलना में उत्पादन कम होता है तो सीमान्त उपयोगिता उत्पादन लागत से अधिक होती है, जिसके कारण मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत से अधिक होता है। इसी से उत्पादकों को अधिक उत्पादन करने की प्रेरणा मिलती है। परन्तु उत्पादन वृद्धि से लागत बढ़ जाती है और सीमान्त उपयोगिता घट जाती है। इस प्रकार धीरे-धीरे सीमान्त उत्पादन लागत और सीमान्त उपयोगिता का अन्तर कम होता जाता है और अन्त में कोई अन्तर नहीं रहता, दोनों बराबर हो जाती हैं। यह सन्तुलन की स्थिति या संस्थिति है। इस स्थिति में सीमान्त उत्पादन लागत और सीमान्त उपयोगिता दोनों ही मूल्य के बराबर होती हैं। दूसरे शब्दों में मांग और पूर्ति की क्रिया-प्रतिक्रिया के

कारण ऐसा मूल्य स्थापित होता है जिस पर सीमान्त लागत और सीमान्त उपयोगिता बराबर होती है।

क्योंकि उत्पादक अपना माल उत्पादन लागत से कम पर नहीं बेच सकता अतः मूल्य किसी भी स्थिति में उत्पादन लागत से कम नहीं हो सकता। ग्राहक कभी भी सीमान्त उपयोगिता से अधिक मूल्य नहीं दे सकता। अतः मूल्य सीमान्त उपयोगिता से अधिक भी नहीं हो सकता। उपयोगिता और लागत मूल्य की अधिकतम और न्यूनतम सीमा निर्धारित करती हैं। किन्तु यह दोनों सीमाएँ सदैव बराबर प्रभावशाली नहीं होतीं। ग्राहकों और विक्रेताओं में स्पर्द्धा की स्थिति में दोनों सीमाएँ प्रभावशाली होती हैं। अल्प-काल में इन सीमाओं के बीच कोई भी मूल्य स्थापित हो सकता है। किन्तु फिर भी मूल्य की प्रवृत्ति सीमान्त उपयोगिता द्वारा निर्धारित उच्चतम सीमा के निकट पहुँचने की रहती है। परन्तु ऊपर के स्पष्टीकरण के अनुसार दीर्घ-काल में दोनों सीमाओं में कोई भेद नहीं रहता, दोनों ही बराबर होती हैं। अतः यद्यपि दीर्घ-काल में मूल्य उत्पादन लागत द्वारा निर्धारित होता है फिर भी माँग और पूर्ति दोनों का प्रभाव पड़ता है?

प्रश्न २४—यह सिद्ध करो कि वस्तु का मूल्य सीमान्त लागत द्वारा निर्धारित होता है किन्तु यह औसत लागत के बराबर भी होता है।

उत्तर—वस्तु का बाज़ार मूल्य सीमान्त उपयोगिता और सीमान्त लागत के बीच कुछ भी हो सकता है। अल्प-काल में इसकी प्रवृत्ति सीमान्त उपयोगिता के निकट आने की रहती है। दीर्घ-काल में सामान्य मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत के बराबर होता है। किन्तु क्योंकि दीर्घ-काल में मूल्य न तो सीमान्त लागत से कम हो सकता है और न सीमान्त उपयोगिता से अधिक। अतः यह दोनों के बराबर होता है।

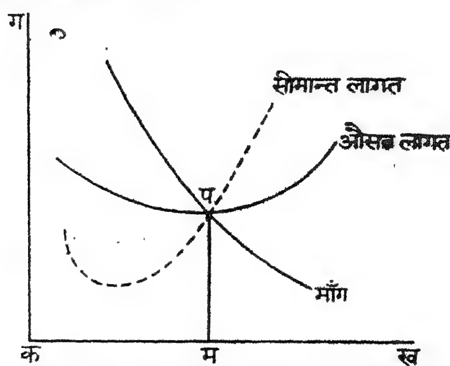
जब किसी उद्योग में उत्पत्ति का क्रमागत ह्रास नियम लागू होता है तो जैसे-जैसे उत्पादन की मात्रा बढ़ती जाती है लागत भी बढ़ती जाती है। इस प्रकार की स्थिति में सीमांत लागत प्रारम्भिक लागत से अधिक होती है। जब माँग बहुत कम नहीं होती और स्पर्द्धा की स्थिति होती है तो उत्पादन में यही

नियम लागू होता है । जब वस्तु सीमान्त लागत पर बिकती है और सीमान्त लागत प्रारम्भिक लागत से अधिक होती है तो यह जान पड़ता है कि अन्तिम इकाई के अतिरिक्त शेष मात्रा पर उत्पादक को लागत से अधिक दाम मिलते हैं; किन्तु यह सोचना ग़लत है । अन्तिम इकाई के अतिरिक्त शेष पूरे उत्पादन का मूल्य कम नहीं होता । साधारणतः सभी उद्योगों में प्रथम क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि का नियम लागू होता है और फिर क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम । इसके कारण प्रारम्भिक उत्पादन के कुछ भाग की लागत औसत लागत से कम होती है किन्तु अन्तिम कुछ भाग की लागत औसत लागत से अधिक भी होती है । अतः जब मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत के बराबर होता है तो यह तो निश्चित ही है कि उत्पादन की पूरी मात्रा पर लाभ नहीं होता । परन्तु फिर भी यह प्रश्न रह जाता है कि कुल उत्पादन पर सामूहिक रूप से लाभ होता है अथवा नहीं ? क्योंकि प्रारम्भ की कुछ मात्रा की लागत अन्त की कुछ मात्रा की लागत से कम होती है ।

यदि उद्योग में पूर्ण उत्पादन पर भी लाभ हो तो उद्योग आकर्षक हो जायेगा जिसके कारण साधक अन्य उद्योगों को छोड़कर इस उद्योग में लग जायेंगे । श्रम और पूंजी लाभ कमाने की दृष्टि से इस उद्योग की ओर आकर्षित होगी । परन्तु इसका प्रभाव यह होगा कि इस उद्योग में उत्पादन बढ़ जायेगा और अन्य उद्योगों में घट जायेगा जिसके कारण इस उद्योग की वस्तु का मूल्य घट जायेगा, अन्यों का बढ़ जायेगा । अतः इस उद्योग में लाभ कम हो जायेगा और दूसरे उद्योगों में बढ़ जायेगा । अतः संस्थिति में किसी उद्योग में अतिरिक्त लाभ नहीं हो सकता । सब उद्योगों की स्थिति समान होगी । यह नहीं कहा जा सकता कि जब सब ही उद्योगों की स्थिति अच्छी है तो सब ही में अतिरिक्त लाभ होगा क्योंकि अतिरिक्त लाभ की परिभाषा है कि यह ऐसा लाभ है जो साहसी को अन्य उद्योगों में प्राप्त नहीं हो सकता । जब सब उद्योगों में स्थिति समान है तो इस प्रकार का अतिरिक्त लाभ सम्भव नहीं हो सकता ।

अतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यद्यपि मूल्य सीमान्त उत्पादन

लागत के बराबर होता है फिर भी उत्पादक को अतिरिक्त लाभ नहीं होता; किन्तु लागत में साहसी एवं सभी अन्य साधकों के परिश्रमों का मूल्य सम्मिलित रहता है। ऐसी स्थिति में मूल्य औसत लागत के बराबर होना भी अनिवार्य है अन्यथा अतिरिक्त लाभ होगा।



प्रश्न ३५—स्पर्द्धा की स्थिति में क्रमागत उत्पत्ति ह्रास नियम ही लागू होता है। इस कथन को स्पष्ट करो।

उत्तर—उत्पादकों में तभी स्पर्द्धा हो सकती है जब उनकी उत्पादन लागत बराबर हो। यह कहना और भी अधिक उचित होगा कि उत्पादक आपस में तभी होड़ कर सकते हैं जब प्रत्येक की लागत दूसरों से अधिक न हो। क्रमागत समान उत्पत्ति की स्थिति में चाहे उत्पादन कितनी भी मात्रा में किया जाये, उत्पादन लागत स्थिर रहेगी; इसमें प्रति इकाई कोई घटा-बढ़ी नहीं होगी। किन्तु फिर भी सब उत्पादकों की लागत बराबर होना आवश्यक नहीं है। कम कार्य-कुशल उत्पादक की लागत अधिक और अधिक कार्य-कुशल की कम होगी। क्योंकि उत्पादन बढ़ाने से उत्पादन लागत में वृद्धि नहीं होती, अतः सबसे कुशल उत्पादक पूरी माँग को सन्तुष्ट कर सकेगा। अन्य उत्पादक-गण अधिक लागत के कारण उससे होड़ नहीं कर सकते; अतः क्रमागत समान उत्पत्ति की स्थिति में स्पर्द्धा सम्भव नहीं है।

क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की स्थिति में जैसे-जैसे उत्पादन मात्रा बढ़ती जाती

है वैसे ही वैसे लागत घटती जाती है। जितना अधिक उत्पादन किया जायेगा लागत उतनी ही कम होगी। इस स्थिति में भी सब उत्पादकों के बराबर कार्य-कुशल होने की आशा नहीं की जा सकती। अतः बराबर मात्रा के उत्पादन के लिए भिन्न उत्पादकों की लागत भिन्न होगी। जो उत्पादक सब से अधिक कार्य-कुशल होगा उसकी लागत सब से कम होगी और वह पूरी माँग को सन्तुष्ट कर सकेगा। अन्य उत्पादक उससे होड़ नहीं कर सकते, क्योंकि पूरी माँग से कम मात्रा में उत्पादन करने से उनकी लागत अधिक होगी। जब माँग बढ़ेगी तो सबसे कुशल उत्पादक इसको और भी अधिक लाभ के साथ सन्तुष्ट कर सकेगा। क्योंकि अधिक उत्पादन से उसकी लागत बढ़ेगी नहीं, घटेगी। इसी कारण से क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की स्थिति में भी उत्पादकों में स्पर्द्धा सम्भव नहीं है।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की स्थिति में एक सीमा तक पहुँचने के बाद और अधिक मात्रा में उत्पत्ति करने से उत्पादन लागत बढ़ जाती है। जब माँग बहुत कम होती है तो सबसे कुशल उत्पादक इसको सन्तुष्ट कर सकता है किन्तु जब माँग बढ़ती है तो पूर्ति भी बढ़ानी पड़ती है परन्तु पूर्ति बढ़ाने से अधिक कुशल उत्पादक की लागत भी बढ़ जाती है। इस बढ़ी हुई लागत पर कम कुशल उत्पादक भी थोड़ी मात्रा में उत्पादन कर सकते हैं। इस प्रकार की स्थिति में भिन्न-भिन्न मात्रा उत्पादन कर अधिक और कम कुशल उत्पादकों में स्पर्द्धा हो सकती है। जैसे-जैसे माँग बढ़ती जाती है वैसे ही वैसे अधिक उत्पादन की लागत भी बढ़ती जाती है जिसके कारण कम कुशल उत्पादकों की स्पर्द्धा शक्ति बढ़ती जाती है। इसलिए जब क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की स्थिति होती है तो स्पर्द्धा सम्भव होती है। स्पर्द्धा में हम केवल क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की स्थिति होने की आशा कर सकते हैं।

प्रश्न ३६—पूर्ति की लोच क्या है? यह किन दशाओं पर निर्भर होती है?

उत्तर—मूल्य परिवर्तन के साथ-साथ पूर्ति में भी परिवर्तन होता है। किन्तु यह सदैव एक समान नहीं होता। पूर्ति की लोच मूल्य परिवर्तन के साथ

पूर्ति परिवर्तन की क्षमता का सम्बन्ध है। साधारणतः मूल्य बढ़ने से पूर्ति बढ़ जाती है और मूल्य घटने से पूर्ति घट जाती है। यदि और सब दशाएँ स्थिर हैं तो मूल्य में जितनी अधिक वृद्धि होती है उतनी ही अधिक वृद्धि पूर्ति में होती है। इसी प्रकार अधिक मूल्य गिरने से पूर्ति भी अधिक गिरती है।

किन्तु सब वस्तुओं में अथवा सब समयों और उत्पादन की सर्व परिस्थितियों में मूल्य परिवर्तन से समान पूर्ति परिवर्तन नहीं होता, कुछ में कम और कुछ में अधिक होता है। अर्थात् भिन्न समयों, भिन्न वस्तुओं और भिन्न परिस्थितियों में पूर्ति की लोच भिन्न-भिन्न होती है। किसी वस्तु की माँग में निश्चित परिवर्तन से पूर्ति की मात्रा पर क्या प्रभाव पड़ता है इसी से हम पूर्ति लोच का पता लगाते हैं। क्योंकि पूर्ति उस समय तक बढ़ती रहती है जब तक सीमान्त उत्पादन लागत माँग मूल्य के बराबर न हो जाए अतः उत्पादन वृद्धि से सीमान्त लागत में जो घटा-बढ़ी होती है केवल उसी से हम पूर्ति लोच का पता लगा सकते है। जब सीमान्त लागत में शनैः-शनैः परिवर्तन होता है तो पूर्ति लोच अधिक होती है किन्तु जब सीमान्त लागत में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता है तो पूर्ति लोच कम होती है। क्योंकि जब सीमान्त लागत धीरे-धीरे बढ़ती है तो इसे माँग मूल्य के बराबर होने में अधिक समय लगता है जिसके कारण उत्पादन अधिक बढ़ जाता है। परन्तु जब उत्पादन लागत में जल्दी-जल्दी परिवर्तन होता है तो सीमान्त लागत शीघ्र ही माँग मूल्य के बराबर हो जाती है जिसके कारण उत्पादन कम बढ़ पाता है।

क्रमागत उत्पादन वृद्धि की स्थिति में उत्पादन बढ़ने से सीमान्त लागत कम हो जाती है। जब सीमान्त लागत धीरे-धीरे घटती है तो माँग मूल्य शीघ्र ही उत्पादन लागत के बराबर हो जाता है और इस बीच उत्पादन थोड़ा ही बढ़ पाता है किन्तु जब सीमान्त लागत जल्दी-जल्दी घटती है तो माँग मूल्य और उत्पादन लागत बराबर होने के बीच के समय में उत्पादन अधिक बढ़ जाता है। अर्थात् पूर्ति लोच उत्पादन लागत घटने की गति पर निर्भर होती है। सीमान्त उत्पादन लागत जितने ही अधिक वेग से घटती है पूर्ति लोच उतनी ही अधिक होती है और सीमान्त उत्पादन लागत जितने ही कम

वेग से घटती है पूर्ति लोच उतनी ही कम होती है। किन्तु जैसा प्रश्न ३९ के उत्तर में कहा जा चुका है स्पर्द्धा की स्थिति में क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि सम्भव नहीं होती अतः इस पर अधिक विचार करना व्यर्थ है।

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की स्थिति में अधिक उत्पादन से सीमान्त लागत में वृद्धि होती है। यह तो स्पष्ट ही है कि सीमान्त लागत जितने ही वेग से बढ़ती है पूर्ति लोच उतनी ही कम होती है। अब हमें विचार करना है कि सीमान्त लागत किन परिस्थितियों में वेग से बढ़ती है और किन परिस्थितियों में धीरे-धीरे।

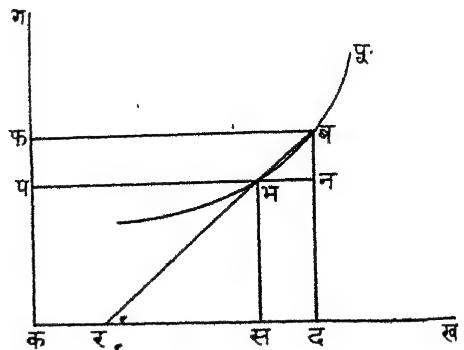
जब किसी उद्योग में आन्तरिक एवं बाह्य अमितव्ययताएँ अधिक होती हैं तो सीमान्त लागत अधिक वेग से बढ़ती है। उत्पादन में आवश्यक साधनों की पूर्ति बढ़ाना जितना ही अधिक कठिन होता है उत्पादन लागत उतने ही अधिक वेग से बढ़ने की सम्भावना रहती है। यदि आवश्यक साधनों की मात्रा बहुत ही सीमित है तो उत्पादन बढ़ाना बहुत ही कठिन होता है, जिससे सीमान्त उत्पादन लागत वेग से बढ़ती है और पूर्ति लोच कम होती है।

अतः दीर्घ-काल में जब साधनों की प्रचुरता होती है तो वस्तु की पूर्ति लोच अधिक होती है।

अल्प-काल में तो पूर्ति केवल विदेशों से (अर्थात् जिस बाज़ार का विचार कर रहे हैं उसको छोड़ कर शेष बाज़ारों से) आयात द्वारा ही बढ़ाई जा सकती है। जब विदेशी बाज़ारों में वस्तु का प्रचुर स्टाक होता है तो मूल्य बढ़ने पर विदेशों से माल मँगा कर पूर्ति काफ़ी बढ़ाई जा सकती है। बंगाल के पाट की लोच कम है क्योंकि यह बंगाल के अतिरिक्त और स्थानों पर उपलब्ध नहीं होता। किन्तु यदि विदेशों में माल है तो सदैव यह आवश्यक नहीं है कि लोच अधिक ही हो। यदि विदेशों से माल मंगाने में कठिनाइयाँ हैं तो पूर्ति लोच कम होती है। इसलिए वस्तु जितनी ही अधिक गतिशील होती है उसकी लोच उतनी ही अधिक होती है।

अल्पकाल में पूर्ति विक्रेताओं की बेचने की इच्छा पर भी निर्भर होती है

और विक्रेताओं की इच्छा भविष्य के मूल्य की आशा पर निर्भर होती है। यदि भविष्य में मूल्य बढ़ने की आशा होती है तो विक्रेता माल रोकना चाहते हैं। अतः जब भविष्य में दाम अधिक गिरने या कम चढ़ने की आशा होती है तो विक्रेता माल रोकना कम पसन्द करते हैं जिसके कारण पूर्ति लोच अधिक होती है।



पूर्ति की लोच

$$= \frac{\text{स द}}{\text{क स}} \div \frac{\text{फ प}}{\text{क प}}$$

$$= \frac{\text{स द}}{\text{फ प}} \times \frac{\text{क प}}{\text{क स}}$$

$$= \frac{\text{भ न}}{\text{न ब}} \times \frac{\text{क प}}{\text{क स}}$$

$$= \frac{\text{र द}}{\text{ब द}} \times \frac{\text{क प}}{\text{क स}}$$

$$= \frac{\text{र स}}{\text{क प}} \times \frac{\text{क प}}{\text{क स}}$$

$$= \frac{\text{र स}}{\text{क स}}$$

प्रश्न ३७—अल्प-काल और दीर्घ-काल में विदेशों से अचानक पूर्ति बढ़ जाने, लागत घटाने वाले आविष्कारों और वस्तु के नए उपयोगों से मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

उत्तर.—(१) विदेशों से अचानक माल आ जाने से वस्तु की पूर्ति बढ़ जाती है जिसके कारण मूल्य घट जाता है। मूल्य का घटना बहुत-सी दशाओं पर निर्भर होता है। यदि पूर्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है और मांग स्थिर रहती है तो मूल्य बहुत अधिक गिर जाता है। यदि वस्तु बिगड़ने वाली है और विदेशी पूर्ति स्थायी है तो मूल्य अधिक गिर जाता है। यह अल्प-कालीन प्रभाव है। विदेशों से पूर्ति बढ़ने से दीर्घ-काल में मूल्य स्थिर भी रह सकता

है और घट भी सकता है किन्तु स्थिर रहने की सम्भावना कम ही रहती है। अल्प-काल में मूल्य गिरने का प्रभाव दीर्घ-कालीन पूर्ति पर पड़ता है। यदि मूल्य दोबारा उत्पादन लागत के बराबर आना चाहता है तो देशी अथवा विदेशी अथवा दोनों स्थानों से पूर्ति में कमी होना आवश्यक है। देशी और विदेशी पूर्ति में जो अधिक परिवर्तनशील प्रकृति की होती है उसी का पूर्ति पर अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि विदेशी उत्पादक अधिक कुशल हैं और उसकी लागत कम है तो मूल्य गिरने का प्रभाव विदेशी उत्पादक पर कम पड़ेगा। जो कुछ भी हो दीर्घ-काल में उत्पादन लागत मूल्य के बराबर आने का प्रयत्न करेगी जिससे पूर्ति घट जायगी और मूल्य बढ़ जायगा। मूल्य बढ़ने की मात्रा पूर्ति की लोच पर निर्भर होती है। पूर्ति लोच जितनी ही अधिक होगी मूल्य वृद्धि भी उतनी ही अधिक होगी। फिर भी अधिक सम्भावना यही रहती है कि दीर्घ-कालीन मूल्य पहले मूल्य से कम ही होगा। यह तभी सम्भव होता है जब पहिला मूल्य एकाधिकार के कारण सीमान्त उत्पादन लागत से अधिक हो। ऐसी स्थिति में विदेशी आयात से देशी एकाधिकार समाप्त हो जाता है और मूल्य उत्पादन लागत के बराबर आ जाता है।

(२) लागत घटाने वाले आविष्कारों से उत्पादन बढ़ जाता है और मूल्य घट जाता है। मूल्य घटने की मात्रा आविष्कार की प्रकृति और माँग की लोच पर निर्भर होती है। माँग की लोच जितनी ही अधिक होगी आविष्कार का प्रभाव मूल्य पर उतना ही कम पड़ेगा। अल्प-काल में तो मूल्य में कुछ न कुछ कमी होने की ही सम्भावना रहती है और साधारणतया यह मूल्य दीर्घ-कालीन मूल्य से कम ही होता है।

आविष्कार के कारण उत्पादक या तो उत्पादन मात्रा बढ़ा देते हैं और उस समय तक बढ़ाते रहते हैं जब तक कि नई सीमान्त लागत मूल्य के बराबर न हो जाय अथवा उत्पादन स्थिर रखते हुए पहिले से कम सीमान्त लागत पर उत्पादन करते हैं और पहिले भाव पर बेचकर अतिरिक्त लाभ उठाते हैं। यदि उत्पादक बाद वाली नीति को अपनाते हैं तो मूल्य या तो स्थिर रहता है अथवा बहुत कम घटता है। किन्तु दीर्घ-काल में तो स्पर्द्धा के

कारण उत्पादन बढ़ता ही है और नया संस्थिति मूल्य पहिले मूल्य से कम होता है। यदि उत्पादक प्रथम नीति को अपनाकर उत्पादन एकदम बढ़ा देते हैं तो मूल्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है, वह शीघ्रता से कम हो जाता है। जो उत्पादक दीर्घ-काल में नए आविष्कारों का उपयोग कर अपनी लागत नहीं घटा पाते उन्हें उत्पादन बन्द कर देना पड़ता है जिसके कारण दीर्घ-काल में उत्पादन घटने और मूल्य बढ़ने की सम्भावना रहती है।

(३) वस्तु के नए उपयोगों से केवल माँग बढ़ती है जिसके कारण मूल्य बढ़ जाता है। अल्प-काल में पूर्ति के स्थिर होने के कारण मूल्य वृद्धि बहुत अधिक होती है। किन्तु क्योंकि दीर्घ-काल में पूर्ति भी बढ़ जाती है अतः अल्प-काल की तुलना में मूल्य घट जाता है परन्तु फिर भी यह वस्तु के नवीन उपयोग के प्रारम्भ होने के पहले मूल्य से अधिक ही होता है। अन्तिम रूप में तो मूल्य वृद्धि की मात्रा माँग और पूर्ति की लोच पर निर्भर करती है। पूर्ति की लोच जितनी ही अधिक होगी मूल्य उतना ही कम बढ़ेगा और माँग की लोच जितनी ही अधिक होगी मूल्य उतना ही अधिक बढ़ेगा।

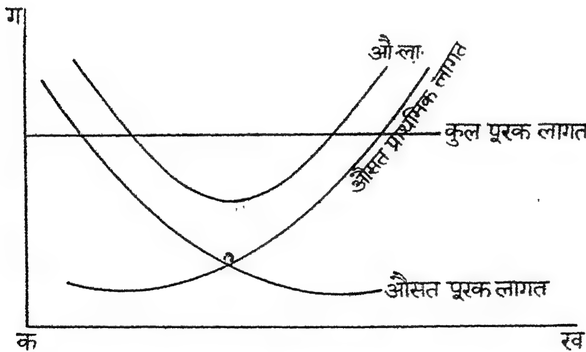
प्रश्न २८—प्रमुख लागत और पूरक लागत का क्या अर्थ है ? अल्प-काल में किसकी अधिक महत्ता होती है ?

उत्तर—लागत का वह भाग जो अल्प-काल में घट-बढ़ सकता है प्रमुख लागत कहलाता है। पूरक लागत लागत का वह भाग है जो अल्प-काल में स्थिर रहता है और केवल दीर्घ-काल में ही घट-बढ़ सकता है। अल्प-काल में साधारण श्रमिकों की मज़दूरी और कच्चे माल के मूल्य जैसे तत्त्वों में घट-बढ़ हो सकती है। अतः प्रमुख लागत इस प्रकार के कुल व्ययों का योग होती है। उच्च अधिकारियों का वेतन, भूमि का लगान, स्थिर पूंजी का ब्याज आदि ऐसे व्यय हैं जो अल्प-काल में कम नहीं किये जा सकते। लागत का यह भाग अल्प काल में स्थिर रहता है।

क्योंकि अल्प-काल में केवल प्रमुख लागत में ही परिवर्तन हो सकता है अतः अल्प-काल में इसकी ही अधिक महत्ता होती है। प्रमुख लागत और पूरक लागत मिलकर दीर्घ-कालीन मूल्य अथवा सामान्य मूल्य का निर्धारण

करते हैं। क्योंकि अल्प-काल में पूरक लागत स्थिर होती है अतः उत्पादन मात्रा घटाकर इसमें कमी नहीं की जा सकती। जब माँग गिर जाती है और मूल्य घट जाता है तो मूल्य बढ़ाने की दृष्टि से उत्पादक को उत्पादन घटाना पड़ता है। परन्तु जब वह उत्पादन घटाता है तो पूरक लागत स्थिर रहती है, केवल प्रमुख लागत में ही कमी होती है। उत्पादन घटाने की मात्रा का निश्चय प्रमुख लागत घटने की गति पर निर्भर होता है। अल्प-काल में उत्पादक को कम से कम प्रमुख लागत के बराबर मूल्य मिलना चाहिए। यदि उसे इतना मूल्य भी नहीं मिल पाता तो वह उत्पादन में और अधिक कमी कर देता है।

अतः अल्प-काल में मूल्य प्रमुख लागत से कम नहीं हो सकता परन्तु दीर्घ-काल में मूल्य कम से कम प्रमुख और पूरक लागत दोनों के बराबर होना चाहिए।



प्रश्न २६—उत्पादन लागत में कौन-कौन से तत्त्व सम्मिलित रहते हैं? वास्तविक आर्थिक लाभ लागत का अंश है अथवा नहीं?

उत्तर—श्रम, पूँजी, भूमि, संगठन और साहस व्यय मिलकर वस्तु की लागत होती है। लागत में सब साधकों का व्यय सम्मिलित रहता है। श्रम व्यय मज़दूरी, पूँजी व्यय व्याज, भूमि व्यय लगान, संगठन व्यय वेतन और साहस व्यय बीमा व्यय कहलाता है। मोटे तौर से लागत के तत्त्वों का

प्रकार वर्गीकरण किया जाता है। किन्तु प्रत्येक वर्ग में अनेक छोटे-छोटे खर्च होते हैं। कुशल कारीगर की मज़दूरी, माल ढोने वालों की मज़दूरी और स्थायी श्रम की मज़दूरी सभी मज़दूरी में शामिल रहती हैं। पूँजी लागत में विशुद्ध पूँजी ब्याज, कच्चे माल का मूल्य, स्थिर पूँजी का टूट-फूट व्यय और नवीन आविष्कारों के कारण पुराने यंत्रों का ह्रास सम्मिलित रहते हैं।

उत्पादन करने के लिए सब आवश्यक व्यय उत्पादन लागत के अंश होते हैं। उत्पादन के लिए जिन-जिन साधनों की आवश्यकता होती है उन्हें कार्य करने के बदले में पर्याप्त पुरस्कार मिलना चाहिए नहीं तो उनका प्राप्त करना कठिन हो जाता है। सब साधनों पर कुल व्यय मिलकर उत्पादन लागत कहलाता है।

अतएव उत्पादन लागत में लाभ सम्मिलित नहीं रहता। अर्थशास्त्र के सच्चे अर्थों में लाभ किसी आवश्यक साधन को निरन्तर नहीं देना पड़ता। यदि किसी उद्योग में अतिरिक्त लाभ न हो तो उत्पादन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। क्योंकि मनुष्य भविष्य के बारे में सही-सही अनुमान नहीं लगा सकता अतः उसे भविष्य की माँग और भविष्य में भिन्न साधनों के मूल्य का सही-सही अनुमान नहीं हो पाता। यदि अनुमान अधिक आशातीत होता है तो उत्पादक अधिक साधनों का उपयोग करता है जिसके कारण उत्पादन बढ़ जाता है। किन्तु जब वास्तविक स्थिति अनुमान से कम अच्छी होती है तो हानि हो जाती है। इसी प्रकार जब भविष्य का अनुमान निराशाजनक होता है तो लाभ हो जाता है।

कुछ लोगों का विचार है कि सामान्य लाभ उत्पादन लागत में सम्मिलित रहता है परन्तु यह केवल ऐसे व्यक्ति कहते हैं जो साहसी के कार्य को ठीक प्रकार नहीं समझते। जो जोखिम लेता है वही साहसी होता है। जोखिम आर्थिक परिस्थिति में परिवर्तन के कारण होती है। यदि भविष्य में होने वाले परिवर्तनों का सही-सही ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता तो साहसी का कार्य जोखिम का कार्य हो जाता है। साहसी को जोखिम के बदले में बीमा व्यय के

नाम से तो उत्पादन का कुछ भाग मिलता ही है; परन्तु वास्तव में यह साधारण बीमा-व्यय की भाँति नहीं होता। यह व्यय अवश्य ही उत्पादन लागत में सम्मिलित रहता है परन्तु अर्थशास्त्र के सच्चे अर्थों में यह लाभ नहीं है। उत्पादन लागत से अधिक जो दाम मिलते हैं वही लाभ होता है अतः वह लागत में सम्मिलित ही नहीं होता।

प्रश्न ४०—**संयुक्त माँग और संयुक्त पूर्ति एवं संग्रथित माँग और संग्रथित पूर्ति का अर्थ है? स्पष्ट करो कि मूल्य परिवर्तन का संयुक्त माँग और संयुक्त पूर्ति के मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?**

उत्तर—जब किसी एक आवश्यकता को सन्तुष्ट करने के लिए दो या अधिक वस्तुओं की साथ-साथ ज़रूरत होती है तो माँग संयुक्त माँग कहलाती है। ऐसी स्थिति में एक वस्तु का उपयोग बिना दूसरी वस्तु के उपयोग के सम्भव नहीं होता। जैसे मोटर-कार के साथ पैट्रोल, क़लम के साथ स्याही और ईंट के साथ चूने की आवश्यकता होती ही है। अतः यह संयुक्त माँग हैं।

जब एक वस्तु की पूर्ति के साथ एक या अनेक और वस्तुओं की पूर्ति हो जाती है तो पूर्ति संयुक्त पूर्ति कहलाती है। चाँदी के साथ गिलट और गेहूँ के साथ भूसे की पूर्ति स्वयं ही हो जाती है। जब हम एक वस्तु का उत्पादन करते हैं तो दूसरी का नैसर्गिक रूप से हो जाता है।

साधारणतः प्रत्येक वस्तु के बहुत से उपयोग होते हैं और बहुत से मनुष्य इसे सभी उपयोगों के लिए चाहते हैं। किसी वस्तु के सब उपयोगों और सब व्यक्तियों की माँग मिलकर उस वस्तु की संग्रथित माँग कहलाती है। नमक की औद्योगिक माँग, भोजन बनाने की माँग और वस्तुओं को सुरक्षित रखने की माँग मिलकर नमक की संग्रथित माँग कहलाती है।

लगभग प्रत्येक वस्तु की पूर्ति बहुत से साधनों द्वारा होती है। किसी भी वस्तु का उत्पादन अनेक बाज़ारों, देश के बहुत से स्थानों और संसार के अनेक देशों में होता है। एक बाज़ार की सब साधनों से पूर्ति मिलकर उस बाज़ार की संग्रथित पूर्ति कहलाती है। जो वस्तु जितनी ही टिकाऊ और यातायात योग्य होती है वह किसी बाज़ार के लिए उतने ही अधिक साधनों से सेप्राप्त

की जा सकती है अतएव उसकी संग्रथित पूर्ति अधिक होती है। भारतवर्ष कोयला मध्य प्रदेश, बिहार और बंगाल में पाया जाता है अतः इन स्थानों की पूर्ति मिलकर भारतवर्ष के कोयले की संग्रथित पूर्ति कहलाती है।

जब एक साथ उत्पादन होने वाली किसी वस्तु का मूल्य परिवर्तित होता है तो यह संयुक्त उत्पादन की शेष वस्तुओं पर भी प्रभाव डालता है। उनके मूल्य में भी परिवर्तन हो जाता है। यदि माँग वृद्धि के कारण मूल्य बढ़ जाता है तो पूर्ति भी बढ़ जाती है। किन्तु संयुक्त पूर्ति होने के कारण जिस वस्तु की माँग बढ़ती है केवल उसी की ही पूर्ति नहीं बढ़ती किन्तु संयुक्त पूर्ति की शेष सब वस्तुओं की पूर्ति भी बढ़ जाती है किन्तु इन अन्य वस्तुओं की माँग स्थिर रहने के कारण इनका मूल्य घट जाता है। जिससे पूर्ति घटती है। इन वस्तुओं की पूर्ति घटने से जिस वस्तु की माँग बढ़ी थी उसकी पूर्ति भी घट जाती है परन्तु उसकी बढ़ी माँग के कारण उसका मूल्य बढ़ जाता है।

इसी प्रकार जब किसी संयुक्त माँग वाली वस्तुओं में से किसी एक का मूल्य परिवर्तित होता है तो यह संयुक्त माँग की अन्य वस्तुओं के मूल्य पर भी प्रभाव डालता है। जब माँग बढ़ने से मूल्य बढ़ता है तो संयुक्त माँग वाली अन्य वस्तुओं का उपयोगिता मूल्य बढ़ जाता है। किन्तु जब मूल्य वृद्धि उत्पादन लागत वृद्धि के कारण होती है या पूर्ति कम हो जाने के कारण होती है तो संयुक्त माँग वाली वस्तु का मूल्य घटता है क्योंकि एक वस्तु का मूल्य बढ़ जाने से उसकी माँग घटने के साथ-साथ संयुक्त माँग वाली अन्य वस्तुओं की माँग घटना अनिवार्य है।

प्रकरण ५

एकाधिकार मूल्य सिद्धान्त

प्रश्न ४१—एकाधिकार क्या है और इसके क्या विशेष गुण हैं ?

उत्तर—वैसे तो एकाधिकार की स्थिति में केवल एक विक्रेता होना चाहिए किन्तु आजकल ऐसी सब ही स्थितियाँ जिनमें विक्रेताओं में स्पर्द्धा नहीं होती एकाधिकार के नाम से पुकारी जाती हैं। अतः जब किसी वस्तु का सारा स्टाक एक ही विक्रेता के पास होता है अथवा जब विक्रेताओं में किसी कारणवश स्पर्द्धा नहीं होती तो एकाधिकार की स्थिति होती है।

एकाधिकार का प्रमुख गुण यह है कि (1) विक्रेताओं में स्पर्द्धा नहीं होती ; किन्तु माँग का एकाधिकार भी हो सकता है। स्पर्द्धा के न होने के कारण एकाधिकारी अपने लाभ को अधिकतम करने के ध्येय से ऊँचे से ऊँचा मूल्य लेता है। एकाधिकारी वह व्यक्ति है जो बाज़ार की पूर्ति पर नियंत्रण कर ऊँचा मूल्य लेता है। वह सीमान्त उत्पादन लागत से अधिक मूल्य वसूल करता है। एकाधिकारी जो मूल्य वसूल करता है वह एकाधिकार मूल्य कहलाता है, और इस मूल्य पर उसकी आय अधिकतम होती है।

प्रश्न ४२—स्पष्ट करो कि एकाधिकार और सहकारिता दोनों ही स्पर्द्धा-विरोधी होते हुए भी एक समान नहीं हैं ?

उत्तर—एकाधिकार और सहकारिता दोनों ही स्थितियों में स्पर्द्धा नहीं होती। स्पर्द्धा की स्थिति में सहकारिता और एकाधिकार दोनों ही असम्भव हैं। जब स्पर्द्धा बिलकुल नहीं होती तब एकाधिकार पूर्ण होता है।

जब बहुत से मनुष्यों की एक-सी आवश्यकताएँ होती हैं तो वह व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सकते हैं। जब आवश्यकताएँ व्यक्तिगत रूप से सन्तुष्ट की जाती हैं तब स्पर्द्धा की

स्थिति होती है। जब आवश्यकताएँ सामूहिक रूप से सन्तुष्ट की जाती हैं तो सहयोग या की सहकारिता स्थिति होती है। स्पर्द्धा की स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति का ध्येय अधिकतम व्यक्तिगत लाभ रहता है। अतः भिन्न व्यक्तियों के हितों में संघर्ष होता है। सहकारिता की स्थिति में सामूहिक लाभ को अधिकतम करने का ध्येय रहता है। एकाधिकार में एकाधिकारियों का ध्येय एकाधिकारियों का सामूहिक लाभ अधिकतम करने का रहता हैं।

सहकारिता की स्थिति में सदैव ही एक ही सी आवश्यकताओं वाले बहुत से मनुष्यों का होना नितान्त आवश्यक है किन्तु एकाधिकार में नहीं। एकाधिकारी एक व्यक्ति हो सकता है परन्तु सहयोग के लिए सदैव ही एक से अधिक कम से कम दो व्यक्ति तो चाहिएँ ही।

सहकारिता और एकाधिकार के ध्येयों में भी अन्तर होता हैं। एकाधिकारी का ध्येय मूल्य बढ़ा कर अधिकतम वास्तविक आय करना होता है। सहकारिता का यह ध्येय हो सकता है परन्तु उसके और भी ध्येय हो सकते हैं, जैसे कार्य-कुशलता बढ़ाना।

इसी कारण से जनता एकाधिकार के विरोध में रहती है और सहकारिता के साथ सद्भावना रखती है।

प्रश्न ४३—एकाधिकार कितने प्रकार का होता है? सामाजिक दृष्टि से किस प्रकार का एकाधिकार सबसे कम हानिकारक है?

उत्तर—मोटे तौर पर एकाधिकार दो प्रकार का होता है:—'प्रतिबन्धित' और 'मुक्त' (एकाधिकार का इस प्रकार दो भागों में विभाजन लेखक का स्वयं अपना है। ये 'ग्राउंड वर्क आफ एकानामिक्स' में विस्तारपूर्वक स्पष्ट किये गये हैं।) मुक्त एकाधिकार की स्थिति में उत्पादन पर किसी प्रकार का कानूनी बन्धन नहीं होता। जो चाहे उत्पादन कर सकता है। एकाधिकार किसी प्राकृतिक कारण अथवा लागत औरों से कम होने के कारण होता है। प्रतिबन्धित एकाधिकार की स्थिति में कानून द्वारा स्पर्द्धा पर रोक लगा दी जाती है। प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादन करने की स्वतंत्रता नहीं होती। जिसे सरकारी आज्ञा मिल

जाती है केवल वही उत्पादन कर सकता है। अतः एकाधिकार का यह विभाजन स्पर्द्धा की अनुपस्थिति के कारणों पर निर्भर है।

एकाधिकार—प्राकृतिक, सामाजिक, कानूनी और स्वेच्छा-एकाधिकार इन चार भागों में भी विभक्त किया जा सकता है। इसके अनुसार एकाधिकार साधनों की प्राकृतिक सीमाओं, सामाजिक दशाओं, कानूनी बन्धनों और ऐच्छिक गठबन्धनों के कारण होता है। यह प्रथम विभाजन से अधिक भिन्न नहीं है।

क्षेत्र के अनुसार एकाधिकार स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय इन तीन भागों में बांटा जा सकता है। ऐसी स्थिति में एकाधिकार की सीमा निर्धारित करने में यातायात लागत का प्रमुख हाथ रहता है।

एकाधिकार निजी, अर्धसामाजिक और सामाजिक इन तीन भागों में भी बाँटा जा सकता है। निजी एकाधिकारी व्यक्ति विशेष होता है; सामाजिक एकाधिकारी राज्य होता है; और अर्धसामाजिक एकाधिकारी में उद्योग का आधिपत्य राज्य का होता है किन्तु प्रबन्ध प्राइवेट कम्पनी को सौंप दिया जाता है।

इनमें से वही एकाधिकार सब से कम हानिकारक है जिसमें मूल्य सबसे कम बढ़ता है या एकाधिकार आय लाभ समाज को होता है। सामाजिक एकाधिकार में यह दोनों विशेषताएं वर्तमान रहती हैं। राज्य बहुत ऊंचा मूल्य वसूल नहीं करता और जो एकाधिकार लाभ होता है वह समाज के हितों के लिए ही उपयोग में लाया जाता है।

प्रश्न ४४—एकाधिकार मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है? एकाधिकार और स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य निर्धारण करने वाले तत्त्वों में क्या अन्तर है और क्यों है?

उत्तर—एकाधिकार की स्थिति में पूर्ति पर एकाधिकारी उत्पादक का नियंत्रण रहता है किन्तु स्पर्द्धा में नहीं। अतएव एकाधिकारी उत्पादक पूर्ति घटा-बढ़ा कर बाज़ार भाव घटा-बढ़ा सकता है। स्पर्द्धा करने वाला उत्पादक भी अपना उत्पादन घटा-बढ़ा सकता है किन्तु वह बाज़ार-भाव नहीं

घटा-बढ़ा सकता। एकाधिकारी अथवा स्पर्द्धी उत्पादक दोनों ही अपना लाभ अधिकतम करने के ध्येय से अपने उत्पादन पर नियंत्रण करते हैं। एकाधिकारी उत्पादन का नियंत्रण उन सब तत्त्वों के परिवर्त्तन से कर सकता है जिन पर उसका बस चलता है। वह उत्पादन में परिवर्त्तन कर लागत में कमी करता है और उत्पादन घटा-बढ़ा कर मूल्य पर नियंत्रण करता है। वह लागत और विक्रय मूल्य दोनों ही का नियंत्रण करता है। वह अपनी वास्तविक आय अधिकतम करने को दृष्टि में रखते हुए ही उत्पादन मात्रा का निश्चय करता है। एक सीमा के बाद उत्पादन बढ़ाने से लागत भी बढ़ जाती है, जिससे प्रति इकाई लाभ कम हो जाता है। उत्पादन बढ़ाने के साथ-साथ बाज़ार-भाव भी कम हो जाता है। इस प्रकार उसे अधिक लागत और कम मूल्य दोनों से प्रति इकाई लाभ कम हो जाता है परन्तु वह अधिक मात्रा में माल बेचकर पहले के बराबर अथवा पहले से भी अधिक लाभ कमा सकता है। वह अनुभव से अधिकतम लाभ वाली उत्पादन मात्रा निश्चित करता है।

स्पर्द्धा की स्थिति में उत्पादक अपनी उत्पादन मात्रा में परिवर्तन कर अपनी लागत में परिवर्तन कर सकता है, परन्तु उसकी क्रियाओं का मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता क्योंकि वह अपने उत्पादन में परिवर्तन कर पूर्ति में विशेष परिवर्तन नहीं कर सकता। स्पर्द्धा की स्थिति में एक उत्पादक कुल उत्पादन का इतना थोड़ा भाग बनाता है कि उसकी उत्पादन मात्रा का बाज़ार की पूर्ति पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। वह तो केवल अपनी उत्पादन मात्रा और अपनी लागत पर ही नियंत्रण कर सकता है। उसके लिए भाव तो स्थिर ही होता है। वह जितनी अधिक मात्रा उत्पादन करता है उसकी लागत उतनी ही बढ़ जाती है किन्तु वह अधिक मात्रा बेचकर इस हानि से बच सकता है और पहले से अधिक लाभ भी कमा सकता है।

इस प्रकार एकाधिकार की स्थिति में लागत, उत्पादन और मूल्य तीनों पर नियंत्रण किया जा सकता है। किन्तु स्पर्द्धा की स्थिति में कोई एक उत्पादक केवल अपनी लागत और उत्पादन मात्रा में ही परिवर्तन कर सकता है, मूल्य में नहीं। इसी अन्तर के कारण स्पर्द्धा की स्थिति में अधिकतम लाभ तब

होता है जब सीमान्त लागत और मूल्य बराबर हों। उत्पादक उसी सीमा तक उत्पादन करता है जब तक सीमान्त लागत और मूल्य बराबर न हो जाएँ। उत्पादन मात्रा निश्चित करने का यही माप है। एकाधिकार की स्थिति में उत्पादन मात्रा का निश्चय अधिकतम वास्तविक लाभ करता है। अधिकतम लाभ उत्पादन इकाइयों की संख्या और प्रति इकाई लाभ का गुणनफल होता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि एकाधिकार मूल्य सीमान्त उत्पादन लागत के बराबर नहीं होता क्योंकि पूर्ति में स्पर्द्धा नहीं होती किन्तु स्पर्द्धा मूल्य उत्पादन लागत के बराबर होता है। निम्न तालिका से एकाधिकार की स्थिति और भी स्पष्ट हो जाती है।

उत्पादन मात्रा	लागत प्रति इकाई	मूल्य	प्रति इकाई लाभ	कुल लाभ
इकाइयाँ	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये
१००	५	१०	५	५००
२००	४	९	५	१,०००
३००	३	८	५	१,५००
४००	३½	७½	४	१,६००
५००	४	७	३	१,५००
६००	५	६	१	६००
७००	६	५	—१	—७००

ऊपर की तालिका के अनुसार ४०० इकाई उत्पादन पर अधिकतम लाभ होता है। इस स्थिति में विक्रय मूल्य साढ़े सात रुपये और औसत लागत साढ़े तीन रुपये इकाई है अर्थात् चार रुपये इकाई का लाभ है।

प्रश्न ४५—सीमान्त आय क्या है? मूल्य निर्धारण में इसका क्या महत्त्व है?

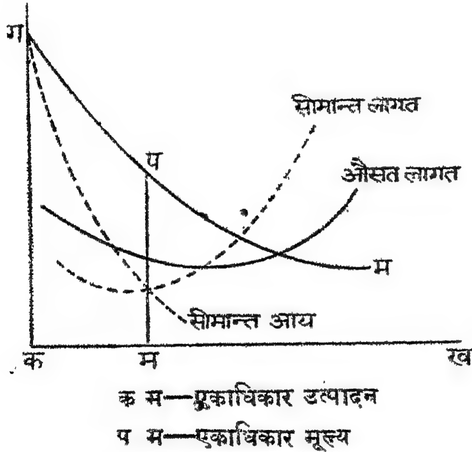
उत्तर—जिस प्रकार सीमान्त लागत होती है उसी प्रकार सीमान्त आय भी होती है। सीमान्त लागत उत्पादन की सीमान्त अथवा अन्तिम इकाई की लागत होती है। इसी प्रकार सीमान्त आय अन्तिम अथवा अतिरिक्त इकाई

के बेचने से प्राप्त अतिरिक्त आय के बराबर होती है। इस प्रकार यदि कोई मनुष्य १०० इकाई उत्पादन १० रुपये प्रति इकाई पर बेचता है तो वह १,००० रुपये कमाता है। यदि अब वह एक इकाई और उत्पादन करता है और इसको भी बेचता है तो उसकी कुल आय में कितनी वृद्धि होगी? यदि वह इसको भी १० रुपये में बेचने में समर्थ है तो उसकी कुल आय में १० रुपये वृद्धि होती है और यह १० रुपये सीमान्त आय कहलायेंगे। पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में ऐसा ही होता है। यदि उत्पादक एक इकाई अधिक बेचता है तो वह कुल स्टाक में इतनी कम वृद्धि करता है कि इसका मूल्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी कारण से पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में सीमान्त आय मूल्य के ठीक बराबर होती है।

अपूर्ण स्पर्द्धा अथवा एकाधिकार की स्थिति में ऐसा नहीं होता। एकाधिकार का उदाहरण ले लीजिए। जब वह एक इकाई अधिक बेचता है तो मूल्य गिर जाता है। अर्थात् यद्यपि एक इकाई बड़ी मात्रा नहीं है परन्तु फिर भी प्रभावात्मक मात्रा है। यदि वह मूल्य नहीं घटाता तो वह अधिक नहीं बेच सकता। इस प्रकार जब वह १०० इकाई के स्थान पर १०१ इकाई बेचता है, तो उसे मूल्य १० रुपये से घटाकर ९ रुपये १२ आने करना पड़ता है। अब उसे १०१ इकाई से कुल आय १००८ रुपये ११ आने होती है अर्थात् कुल आय में केवल ३ रुपये ११ आने की वृद्धि होती है अतः हम कहते हैं कि उसकी सीमान्त आय ३ रुपये ११ आने है।

ऐसी स्थिति में यदि इस अन्तिम इकाई की लागत ३ रुपये ११ आने से अधिक है तो एकाधिकारी इसका उत्पादन नहीं करेगा। यदि लागत इससे कम है तो वह इसका उत्पादन करेगा और इस प्रकार कुछ अतिरिक्त लाभ प्राप्त करेगा। वह उस समय तक उत्पादन करता रहेगा जब तक कि अन्तिम इकाई की लागत इस इकाई से अतिरिक्त आय के बराबर नहीं हो जाती। दूसरे शब्दों में वह उस बिन्दु पर रुक जायेगा जिस पर सीमान्त आय सीमान्त लागत के बराबर है। अतः सीमान्त आय का यही महत्त्व है कि इसके द्वारा हम यह बतलाने में समर्थ होते हैं कि मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है।

जो एकाधिकारी के लिए सत्य है वही अन्य उत्पादकों के लिए भी सत्य है। स्पर्द्धात्मक बाज़ार में भी उत्पादक उसी समय तक उत्पादन करता है, जब तक कि अतिरिक्त लागत अतिरिक्त आय के बराबर नहीं हो जाती। परन्तु ऐसी स्थिति में जैसा हम पहले कह चुके हैं अतिरिक्त आय मूल्य के बराबर होती है। इसलिए हम कहते हैं कि वह उस समय तक उत्पादन करता है जब तक सीमान्त लागत मूल्य के बराबर हो जाती है। परन्तु हम यह भी कह सकते हैं कि स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य सीमान्त लागत और सीमान्त आय की बराबरी द्वारा निर्धारित होता है।



क म—एकाधिकार उत्पादन
प म—एकाधिकार मूल्य

प्रश्न ४६—विवेचनात्मक एकाधिकार क्या है? विवेचनात्मक मूल्य वसूल करने के लिए क्या उपाय काम में लाये जाते हैं?

उत्तर—जब एकाधिकारी एक ही वस्तु के लिए भिन्न व्यक्तियों से अथवा एक ही व्यक्ति से भिन्न उपयोगों और भिन्न समयों पर भिन्न मूल्य लेता है तो विवेचनात्मक एकाधिकार की स्थिति होती है। अतः विवेचना तभी सम्भव है जब एक ही वस्तु के दो या अधिक भाव हों।

एकाधिकारी भिन्न आय-वर्गों, भिन्न उपयोगों, भिन्न बाज़ारों और

भिन्न समयों पर भिन्न-भिन्न दाम लेकर विवेचना कर सकता है।

एकाधिकारी अपनी आय अधिकतम करने की दृष्टि से ही मूल्य विवेचन करता है। विवेचन के मूल्य के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक बाज़ार, प्रत्येक उपयोग और प्रत्येक समय एकाधिकारी अधिकतम आय को ध्येय बनाकर अधिक से अधिक मूल्य लेता है। यह तभी सम्भव है जब उसके द्वारा एक व्यक्ति, बाज़ार, उपयोग या समय पर बेचा हुआ सामान और किसी प्रकार काम में न लाया जा सके। जब वह इस प्रकार की स्थिति स्थापित करने में सफल हो जाता है तो वह उपभोक्ता के पास कोई उपयोगिता बचत नहीं रहने देता अर्थात् प्रत्येक से उसकी उपयोगिता के बराबर मूल्य लेता है। वह सब वर्गों और सब बाज़ारों की सामूहिक सीमान्त उपयोगिता के बराबर मूल्य सबसे नहीं लेता किन्तु भिन्न वर्गों और भिन्न बाज़ारों से उनकी अलग-अलग सीमान्त उपयोगिता के बराबर मूल्य लेता है। कुछ बाज़ारों और वर्गों की अलग-अलग सीमान्त उपयोगिता सामूहिक सीमान्त उपयोगिता से भिन्न और अधिक होती है जिसके कारण उनसे वह अधिक मूल्य लेता है।

कुछ परिस्थितियों में एकाधिकारी किसी बाज़ार विशेष में अधिक लाभ के लिए कम मूल्य ले सकता है क्योंकि उसका ध्येय प्रत्येक बाज़ार में अधिकतम सम्भव लाभ नहीं होता किन्तु सब बाजारों में मिलाकर कुल लाभ अधिकतम करने का ध्येय रहता है।

जनता सदैव ही मूल्य विवेचना की आलोचना करती है और कभी-कभी तो यह सामाजिक हितों के विरुद्ध भी होती है। इसके कारण एकाधिकारी खुले रूप में विवेचना करता डरता है। वह एक ही गुणों वाली वस्तु को भिन्न-भिन्न नाम देकर और उनका रूप बदलकर भिन्न आय-वर्गों में छिपे रूप से विवेचना करता है। शराब, चाकलेट, सिगरेट इत्यादि इसी प्रकार भिन्न-भिन्न नाम देकर और पैकिंग बदलकर भिन्न वर्गों को भिन्न-भिन्न दामों पर बेची जाती है।

साधारणतः भिन्न उपयोगों के लिए भिन्न दाम लिये जाते हैं। बिजली

कम्पनियाँ रोशनी और पंखे और उत्पादन के लिए बिजली देने पर अलग-अलग दाम लेती हैं।

गैस कम्पनियाँ भिन्न मौसमों में अलग-अलग दाम लेती हैं। रेलवे कम्पनियाँ भिन्न वस्तुओं पर अलग-अलग किराया लेती हैं।

निजी एकाधिकारी की तरह सार्वजनिक एकाधिकारी मूल्य विवेचन अपना लाभ बढ़ाने के लिए नहीं करता किन्तु उपभोक्ताओं के सुभीते और हित के लिए करता है।

प्रश्न ४७.—क्या विवेचनात्मक एकाधिकार की स्थिति में मूल्य साधारण एकाधिकार की स्थिति से भिन्न तत्त्वों द्वारा निर्धारित होता है? मूल्य विवेचन में एकाधिकारी का क्या ध्येय होता है?

उत्तर—विवेचनात्मक एकाधिकार की स्थिति में मूल्य भिन्न तत्त्वों द्वारा निर्धारित नहीं होता। प्रत्येक उत्पादक का ध्येय अपना लाभ अधिकतम करने का रहता है। एकाधिकारी भी इसी ध्येय से अपनी पूर्ति पर इस प्रकार नियंत्रण करता है कि उसको अधिकतम सम्भव लाभ हो। किस मूल्य पर एकाधिकार आय अधिकतम होगी यह पूर्ति और मांग की लोच पर निर्भर है। जो एकाधिकारी मूल्य विवेचन करता है उसका ध्येय भी एकाधिकार आय अधिकतम करने का ही रहता है। इसी को दृष्टि में रखते हुए वह प्रत्येक बाज़ार और प्रत्येक वर्ग की पूर्ति निर्धारित करता है। दो प्रकार के एकाधिकारों में अन्तर केवल इतना ही है कि साधारण एकाधिकार में सब ग्राहकों से एक ही मूल्य लिया जाता है जब कि विवेचनात्मक एकाधिकार में भिन्न ग्राहकों से भिन्न मूल्य लिया जाता है। जब कभी भी सम्भव होता है, मूल्य विवेचन एकाधिकार आय बढ़ाने की दृष्टि से ही किया जाता है। मूल्य विवेचन जितना ही अधिक सम्भव होता है उतनी ही अधिक एकाधिकार आय होती है। विवेचनात्मक एकाधिकारी का ध्येय प्रत्येक व्यक्ति एवं बाज़ार से प्रत्येक स्थिति में अधिकतम मूल्य लेना रहता है। वह केवल गरीबों और अमीरों से ही अलग-अलग दाम नहीं लेता किन्तु ऐसे सभी वर्गों से जिनकी मांग बिलकुल एक-सी नहीं होती उनसे अलग-अलग दाम लेता है। विवेचनात्मक

एकाधिकार की स्थिति में उपभोक्ता की बचत का पूरी तरह शोषण किया जाता है।

साधारण एकाधिकार में मूल्य पूर्ति और कुल मांग की लोच पर निर्भर होता है किन्तु विवेचनात्मक एकाधिकार में मूल्य पूर्ति और भिन्न वर्गों अथवा बाज़ारों की मांग की लोच पर निर्भर होता है।

प्रश्न ४८.—स्पष्ट करो कि एकाधिकारी की शक्तियों पर क्या-क्या रोक होती है ?

उत्तर—एकाधिकारी की शक्ति का अनुमान उसके मूल्य से ही किया जा सकता है। यह सत्य है कि कभी-कभी एकाधिकारी अपनी शक्ति से कम मूल्य ले लेता है परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। जब कभी एकाधिकारी अधिकतम सम्भव मूल्य से कम मूल्य लेता है तो इसका कारण यह होता है कि उसकी एकाधिकार आय इस कम मूल्य पर ही दीर्घकाल में अधिकतम होती है।

जिन कारणों से एकाधिकारी अधिकतम सम्भव मूल्य से कम मूल्य पर वस्तु बेचता है वही कारण उसकी शक्ति पर रोक होते हैं।

इन कारणों में सबसे अधिक बलवान स्पर्द्धा का भय है। सामान्य मूल्य पर स्पर्द्धा का भय नहीं रहता परन्तु जब मूल्य बहुत अधिक होता है तो यह औद्योगिक आकर्षण का केन्द्र बन जाता है जिससे नये कारखाने खुल जाते हैं और स्पर्द्धा होने लगती है। नये पूंजीपति उद्योग के लाभ से ही आकर्षित होते हैं। अतः मुक्त एकाधिकार में स्पर्द्धा का भय एकाधिकारी की शक्ति पर सबसे बड़ी रोक है।

एकाधिकारी को यह भय भी रहता है कि कहीं उपभोक्ता मिलकर उपभोक्ता-एकाधिकार स्थापित न कर लें। बहुत ऊँचा मूल्य उपभोक्ताओं की सामर्थ्य के बाहर होता है अतः एकाधिकारी को सोचना पड़ता है कि कहीं उपभोक्ता मिलकर संघ न बना लें। अतः वह उपभोक्ता-संघ के भय से कुछ कम मूल्य लेता है।

कभी-कभी उपभोक्ताओं के हितों को ध्यान में रखते हुए राज्य एकाधिकारी पर बन्धन लगा देता है। अतः एकाधिकारी को यह विचार भी रखना

पड़ता है कि कहीं वह राज्य की दृष्टि में न गिर जाये। यदि मूल्य बहुत अधिक होता है तो जनता विरोध में आवाज़ उठाती है। एकाधिकारी अपने दीर्घकालीन हितों को दृष्टि में रखते हुए इसका ध्यान रखता है, जो अदूरदर्शी होता है वही इसकी अवहेलना करता है।

जिन वस्तुओं के स्थान पर अन्य वस्तुओं का उपयोग हो सकता है तुलनात्मक रूप से उनकी मांग की लोच अधिक होनी है जिसके कारण एकाधिकारी इन वस्तुओं का बहुत अधिक मूल्य नहीं ले सकता। जब किसी वस्तु का मूल्य एक सीमा को पार कर जाता है तो यदि इस वस्तु के स्थान पर दूसरी वस्तु से काम चल सकता है तः इन दो या अधिक वस्तुओं में स्पर्द्धा प्रारम्भ हो जाती है जैसे चाय और कहवा।

जब मांग की लोच कम होती है तो एकाधिकारी अधिक मूल्य ले सकता है : इसी प्रकार जब पूर्ति की लोच कम होती है तो थोड़ा सा ही उत्पादन बढ़ाने से उत्पादन-लागत अधिक बढ़ जाती है, अतः ऐसी स्थिति में एकाधिकारी का हित कम उत्पादन और अधिक मूल्य में होता है।

प्रश्न ४६—किन परिस्थितियों में एकाधिकार-मूल्य स्पर्द्धा मूल्य से बहुत अधिक भिन्न होता है?

उत्तर.—इस प्रश्न का उत्तर पिछले प्रश्न के उत्तर में दिया जा चुका है फिर भी संक्षेप में हम निम्न प्रकार कह सकते हैं।

१. मांग की लोच जितनी ही कम होगी एकाधिकार मूल्य उतना ही अधिक होगा। एकाधिकारी कितना मूल्य बढ़ा सकता है यह इस पर निर्भर करता है कि मूल्य वृद्धि की मांग पर क्या प्रतिक्रिया होती है। यदि मूल्य बढ़ाने से मांग थोड़ी ही घटती है अर्थात् मांग की लोच कम है तो एकाधिकारी लाभ के साथ अधिक मूल्य बढ़ा सकता है ; परन्तु यदि मूल्य बढ़ने के साथ-साथ मांग बहुत घट जाती है तो मूल्य बढ़ाने से एकाधिकारी को अधिक लाभ नहीं होता।

२. क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की स्थिति में यदि पूर्ति लोच कम होती है तो एकाधिकार मूल्य अधिक होता है। जब पूर्ति लोच कम होती है और

क्रमागत उत्पत्ति ह्रास की स्थिति होती है तो थोड़ा उत्पादन कम करने से लागत काफी कम हो जाती है, अतः उत्पादन कम करने से और मूल्य बढ़ाने से एकाधिकारी को अवश्य ही लाभ होता है। क्रमागत उत्पत्ति वृद्धि की स्थिति में पूर्ति लोच जितनी अधिक होगी एकाधिकार मूल्य उतना ही अधिक होगा क्योंकि ऐसी स्थिति में उत्पादन जितना ही अधिक किया जायेगा उतनी ही कम लागत होगी।

३. स्पर्द्धा की सम्भावना जितनी ही कम होगी एकाधिकार मूल्य उतना ही अधिक होगा। कभी-कभी स्पर्द्धा पर कानूनी बन्धन लगा दिया जाता है। और कभी-कभी उत्पादन परिस्थितियों के कारण स्पर्द्धा असम्भव हो जाती है। ऐसी परिस्थितियों में एकाधिकारी अधिक मूल्य ले सकता है। एकाधिकारी को केवल एक वस्तु से स्पर्द्धा नहीं करनी पड़ती। उसे ऐसी सब वस्तुओं का ध्यान रखना पड़ता है जो उसकी वस्तु के स्थान पर उपयोग में लायी जा सकती हैं। जब किसी वस्तु के स्थान पर अन्य कम वस्तुओं का उपयोग हो सकता है तो एकाधिकार मूल्य अधिक होता है।

४. जब उपभोक्ता संघ की सम्भावना होती है तो एकाधिकार मूल्य कम होता है।

प्रश्न ५०—'उपभोक्ताओं को एकाधिकार की स्थिति में कम हानि होती है और स्पर्द्धा की स्थिति में अधिक'। इस कथन पर विचार करो।

उत्तर.—यह कहना तो सत्य ही है कि उपभोग ही उत्पादन का ध्येय है परन्तु फिर भी इसको ठीक प्रकार से समझने की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति उत्पादक और उपभोक्ता दोनों ही है। हमें उपभोग करना पड़ता है इसलिए उत्पादन भी करना पड़ता है। यदि बिना उत्पादन के उपभोग सम्भव हो तो उत्पादन कभी किया ही न जाये। यदि इस प्रकार उत्पादन साधन मात्र है और ध्येय नहीं है तो हमें उत्पादन के उपभोग पर प्रभाव से ही इसकी आवश्यकता पर विचार करना चाहिए। एकाधिकार प्रणाली अथवा स्पर्द्धा प्रणाली कौन अधिक हितकर है, इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें विचार करना होगा कि उपभोक्ता के लिए कौन अधिक हितकर है।

किन्तु उपभोक्ता के हितों पर विचार करते समय हमें केवल अल्पकालीन हितों पर ही नहीं परन्तु दीर्घकालीन हितों पर भी विचार करना चाहिए।

यह तो स्पष्ट ही है कि एकाधिकार अथवा स्पर्द्धी उत्पादक दोनों ही का ध्येय स्वयं का लाभ अधिकतम करने का रहता है। दोनों ही उपभोक्ता से अधिक से अधिक दाम लेना चाहते हैं। परन्तु फिर भी दोनों में अन्तर है। स्पर्द्धा की स्थिति में उत्पादक उपभोक्ताओं का लाभ किये बिना अपना लाभ नहीं कर सकता। उत्पादक का माल उपभोक्ताओं के माल से सम्बन्धित रहता है। वह एकाधिकारी की भाँति उपभोक्ताओं को नहीं लूट सकता। वह अपनी आय बढ़ाने के लिए अन्य उत्पादकों को लूटने का प्रयत्न करता है। वह उपभोक्ताओं से नहीं किन्तु उत्पादकों से युद्ध करता है। उसके युद्ध ढंगों में भी एकाधिकारी के ढंगों से अन्तर होता है। उपभोक्ताओं की हानि एकाधिकारी का लाभ होता है परन्तु स्पर्द्धा की स्थिति में एक उत्पादक की हानि दूसरे उत्पादक का लाभ होता है। स्पर्द्धा को स्थिति में मूल्य गिरता है किन्तु एकाधिकार की स्थिति में चढ़ता है। इन तत्कालीन प्रभावों से एकाधिकार की तुलना में स्पर्द्धा उपभोक्ता को अधिक लाभ पहुँचाती है।

इसके अतिरिक्त स्पर्द्धा की स्थिति में उत्पादकों में केवल मूल्य गिराने के लिए होड़ नहीं होती परन्तु लागत कम करने के लिए भी होती है। अतः उत्पादक ऐसे ढंगों की खोज में रहते हैं कि उत्पादन लागत कम से कम हो जाय। इससे उपभोक्ता को वास्तविक लाभ होता है। किन्तु एकाधिकार की स्थिति में लागत कम करने की चिन्ता केवल नाममात्र को होती है। एकाधिकारी को किसी से होड़ नहीं करनी पड़ती। यदि उसकी कार्यकुशलता बढ़ जाये तो ठीक है, न बढ़े तो कोई विशेष बात नही; उसमें कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए प्रेरणा देने वाली शक्ति का अभाव रहता है।

स्पर्द्धा का उत्पादक पर क्या प्रभाव पड़ता है? इसपर भी हमें विचार करना है। इस प्रसंग में हमें केवल यह विचार करना चाहिए कि उत्पादक पर प्रभावों की उपभोक्ता के दीर्घकालीन हितों पर क्या प्रतिक्रिया होती है। दीर्घकाल में तो स्पर्द्धात्मक उत्पादन की स्थिति में उपभोक्ताओं और उत्पादकों के

हितों में कोई विरोध नहीं होता। यदि स्पर्द्धा से उत्पादक की कार्य-कुशलता कम हो जाए तो अवश्य ही उपभोक्ताओं को हानि होती है। यदि स्पर्द्धा के कारण कुछ कार्यकुशल उत्पादकों का विनाश हो जाता है तो उपभोक्ता के वस्तु प्राप्त करने के साधनों में कमी हो जाती है; यह उपभोक्ता की हानि है। यदि स्पर्द्धा के कारण कुछ उत्पादकों का विनाश होना अनिवार्य है तो स्पर्द्धा के अवगुणों पर विचार करते समय इसका ध्यान रखना चाहिए क्योंकि कार्य-कुशल उत्पादकों के विनाश से मूल्य बढ़ जाता है।

यदि स्पर्द्धा साधारण और उचित ढंगों से की जाती है, यदि यह विनाश करने वाली नहीं है और अनुचित ढंगों का प्रयोग नहीं किया जाता तो स्पर्द्धा से उत्पादकों को हानि नहीं होती—अर्थात् कार्यकुशल उत्पादकों की संख्या कम नहीं होती और कार्यकुशल उत्पादकों का विनाश भी नहीं होता। परन्तु फिर भी स्पर्द्धा में कुछ ऐसे तत्त्व वर्तमान रहते हैं जिनके कारण लागत बढ़ जाती है।

स्पर्द्धा की स्थिति में अत्यधिक विज्ञापन करना पड़ता है क्योंकि दूसरे उत्पादक एवं विक्रेता के क्षेत्र में बेचना होता है। विज्ञापन व्यय की अधिकता से समाज को कोई लाभ नहीं होता। समाज विज्ञापन नहीं चाहता, किन्तु विरोधी उत्पादक विज्ञापन करने को विवश हो जाते हैं। यह उत्पादकों की दृष्टि से आवश्यक किन्तु उपभोक्ताओं की दृष्टि से व्यर्थ का व्यय है। द्वितीय, दूसरों के क्षेत्रों में माल बेचने के लिए माल दूर-दूर भेजना पड़ता है जिस पर भी व्यय व्यर्थ में ही होता है। यह हानि साधारण स्पर्द्धा की स्थिति में भी होती है। इन व्ययों के कारण मूल्य बढ़ाने से उपभोक्ताओं को कम वस्तु प्राप्त होती है। एकाधिकार में इस प्रकार के व्यर्थ के व्यय नहीं होते।

इससे यह स्पष्ट है कि स्पर्द्धा से लाभ और हानि दोनों ही हैं अतः यह कहना असम्भव है कि प्रत्येक स्थिति में स्पर्द्धा अथवा एकाधिकार लाभप्रद है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में दोनों लाभप्रद हो सकते हैं। परिस्थिति वस्तु के गुणों, पूर्ति की दशाओं और मांग की लोच पर निर्भर होती है। किन्तु फिर

भी यह कहा जा सकता है कि स्पर्द्धा से हानि की अपेक्षा लाभ अधिक होता प्रतीत होता है।

निष्कर्ष में हम प्रोफेसर सेलिगमैन के शब्दों में कह सकते हैं :—"स्पर्द्धा आर्थिक जीवन है अतः पूँजी वृद्धि के लिए यह आवश्यक अंग है। व्यक्तिगत सम्पत्ति की भाँति यह उन्नति करने के लिए प्रेरणा देने वाला प्रमुख साधन है; इसके द्वारा लाभ के संचय से हम समाज की आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करते हैं। अधिक लाभ के साथ-साथ मूल्य भी अधिक होता है; स्पर्द्धा अधिक मूल्य पर रोक का कार्य करती है। इसके द्वारा अयोग्य उत्पादकों का लाभ कम हो जाता है; लाभ अधिक मूल्य पर नहीं किन्तु योग्यता पर निर्भर करने लगता है। यह व्यक्तियों को शक्ति और प्रेरणा देती है और मितव्ययता सिखलाती है। यह सामाजिक और व्यक्तिगत हितों में मेल कराती है क्योंकि किसी व्यक्ति की सफलता समाज की सेवा पर ही निर्भर है।"

प्रश्न ५१—सट्टा क्या है? यह कितने प्रकार का होता है? इसकी आर्थिक लाभ हानियाँ क्या हैं?

उत्तर—जब भविष्य में मूल्य परिवर्तन से लाभ कमाने की इच्छा से सौदा किया जाता है तो सौदा सट्टे का सौदा कहलाता है। इस प्रकार जब एक व्यक्ति भविष्य में ऊँचे मूल्य पर माल बेचने की आशा से माल खरीदता है तो वह सट्टा करता है। इसी प्रकार वह व्यक्ति भी जो भविष्य में मूल्य गिरने की आशा से वर्तमान में माल बेचता है सटोरिया कहलाता है।

अतः सट्टा अनिवार्यतः कुछ समय लेता है। यह भिन्न समयों पर भिन्न मूल्य होने के कारण सम्भव है। वास्तव में अर्थशास्त्र में सट्टे का अर्थ ज्ञात परिवर्तन की आशा में क्रय-विक्रय है। यदि प्रत्येक व्यक्ति को भविष्य का बिल्कुल ठीक-ठीक ज्ञान हो जाये तो सभी सट्टा करने का प्रयत्न करें; परन्तु ऐसी स्थिति में सट्टा सम्भव नहीं हो सकता। सट्टे में कुछ न कुछ जोखिम अवश्य ही रहती है। यह भविष्य का बिल्कुल ठीक-ठीक ज्ञान न होने के कारण ही सम्भव है।

आज के युग में सभी व्यापारिक क्रियाएं कुछ अंशों में सट्टा ही हैं क्योंकि उत्पादन में समय लगता है और मनुष्यों को भावी मांग और पूर्ति का अनुमान लगाकर ही क्रय-विक्रय करना पड़ता है। द्वितीय विश्व-युद्ध की गत्यात्मक स्थिति के कारण भविष्य के सब परिवर्तनों का बिल्कुल ठीक ज्ञान सम्भव नहीं है; जिसको अधिक ज्ञान हो जाता है उसको औरों से अधिक लाभ होता है।

जब वस्तु एक स्थान पर खरीदी जाती है और दूसरे स्थान पर बेची जाती है तो कभी-कभी कुछ व्यक्ति इसे भी सट्टा कहते हैं क्योंकि दो स्थानों पर भिन्न-भिन्न मूल्य होता है। परन्तु वास्तव में यह सट्टा नहीं है।

सट्टा नियमित अथवा अनियमित दो प्रकार का हो सकता है। अनियमित सट्टा वस्तुओं के मूल्य में अचानक और अल्पकालीन परिवर्तन की आशा से किया जाता है। नियमित सट्टा अनुभवी, दूरदर्शी और भली प्रकार ज्ञानी व्यक्तियों द्वारा किया जाता है। उनका ध्येय धोखा देना नहीं रहता।

नियमित सट्टा एक पेशा है और अपरिपक्व और अनियमित सट्टे से भिन्न है।

सट्टे और जुए में अन्तर है। सट्टा आर्थिक है किन्तु जुआ नहीं। बिना सोचे विचारे भविष्य में मूल्य घटने-बढ़ने की आशा से खरीदना बेचना सट्टा नहीं है किन्तु जुआ है। फिर भी जैसा कहा जा चुका है सट्टे में कुछ जोखिम लेनी पड़ती है अतः यह कुछ हद तक अवसर पर भी निर्भर होता है अतः जुए और सट्टे में थोड़ा ही अन्तर है।

सट्टा सामाजिक लाभ है किन्तु जुआ नहीं। सट्टा मांग और पूर्ति में संतुलन कर मूल्य स्थिर करता है। जो व्यक्ति भविष्य में मूल्य बढ़ने की आशा रखते हैं वह वर्तमान में मांग बढ़ा देते हैं और पूर्ति कम कर देते हैं। भविष्य में यह लोग बिकवाल बनकर पूर्ति बढ़ा देते हैं। इस प्रकार वह वर्तमान मूल्य बढ़ा देते हैं और भावी मूल्य कम कर देते हैं। इस प्रकार सट्टा जिस समय मांग बढ़ती है उस समय पूर्ति बढ़ाकर और जिस समय मांग घटती है उस समय पूर्ति घटाकर मूल्य की घट-बढ़ को कम कर देता है।

इस प्रकार आर्थिक सट्टे से सामाजिक लाभ है। ऊपर के तर्क से ही जुआ अहितकर है। इससे मांग और पूर्ति में अधिक अन्तर हो जाता है।

परन्तु बेईमान व्यक्तियों द्वारा अनुचित ढंगों का प्रयोग कर सट्टा लाभ बढ़ाने की दृष्टि से भी किया जा सकता है। कभी-कभी सटोरिये झूठी खबर फैलाकर, व्यक्तियों के अज्ञान का लाभ उठाकर और मूल्य में परिवर्तन कर लाभ कमाने का प्रयत्न भी करते हैं।

प्रकरण ६

अपूर्ण स्पर्द्धा

प्रश्न ५२—अपूर्ण स्पर्द्धा क्या है? इसमें पूर्ण स्पर्द्धा से क्या अन्तर है?

उत्तर–जब हम पूर्ण अथवा अपूर्ण स्पर्द्धा की चर्चा करते हैं, तो हम एक ही कार्य में लगे बहुत से व्यक्तियों का विचार करते हैं अर्थात् हम एक आवश्यकता को सन्तुष्ट करने वाले अनेक विक्रेताओं अथवा एक वस्तु की मांग करने वाले अनेक ग्राहकों का विचार करते हैं। अतः अनेक विक्रेताओं अथवा उत्पादकों या वस्तुओं अथवा सेवाओं के ग्राहकों में पूर्ण अथवा अपूर्ण स्पर्द्धा हो सकती है। जब उनमें से प्रत्येक अपना लाभ अधिकतम करने का प्रयत्न करता है तो उनमें स्पर्द्धा कही जाती है। जब विक्रेता अपनी वास्तविक आय अधिकतम करने का प्रयत्न करते हैं तो उनमें स्पर्द्धा होती है; अधिक स्पष्ट शब्दों में विक्रेताओं में एक दूसरे के ग्राहक हड़प करने की स्पर्द्धा होती है। यदि कोई विक्रेता किसी प्रकार दूसरे के ग्राहक छुड़ाकर अपना ग्राहक बना सकता है तो इन विक्रेताओं में स्पर्द्धा कही जाती है। कोई विक्रेता दूसरे से सस्ते मूल्य पर माल बेचकर ही दूसरों के ग्राहकों को हड़प कर सकता है। विक्रेता बिना मूल्य घटाये दूसरी विधिओं द्वारा भी ग्राहकों को आकर्षित कर सकता है परन्तु परोक्ष रूप से यह विधियाँ भी मूल्य में कमी करने के बराबर हैं।

इस प्रकार विक्रेताओं अथवा ग्राहकों में पूर्ण अथवा अपूर्ण स्पर्द्धा हो सकती है। जब एक विक्रेता अपने मूल्य में दूसरे विक्रेताओं के मूल्य से तनिक कमी कर सब विक्रेताओं के सारे ग्राहकों को अपना ग्राहक बना सकता है तो स्पर्द्धा पूर्ण होती है। परन्तु जब इस प्रकार कुछ ही ग्राहकों को दूसरों से छुड़ाकर अपना ग्राहक बनाया जा सकता है तो स्पर्द्धा अपूर्ण होती है।

अतः स्पर्द्धा की पूर्णता अथवा अपूर्णता मूल्य गिराकर दूसरों के ग्राहकों

को आकर्षित करने की मात्रा पर निर्भर है। यदि विक्रेता अपना मूल्य कम कर अन्य विक्रेताओं के एक ग्राहक को भी आकर्षित नहीं कर सकता तो विक्रेता एकाधिकारी होते हैं। अतः एकाधिकार की स्थिति में स्पर्द्धा का पूर्ण रूप से लोप रहता है। स्पर्द्धा की स्थिति में मांग रेखा अनुभूमिक होती है जिससे यह प्रदर्शित होता है कि मूल्य में तनिक कमी से मांग बहुत अधिक बढ़ जाती है। अपूर्ण स्पर्द्धा में मांग रेखा नीचे की ओर ढलवाँ होती है, जो यह प्रदर्शित करती है कि मूल्य घटने से मांग बढ़ती है किन्तु मांग वृद्धि सीमित होती है। एकाधिकार की स्थिति में मांग रेखा लगभग शीर्ष होती है जिससे प्रदर्शित होता है कि मूल्य घटाने से मांग बढ़ने की सम्भावना बहुत ही कम है। मांग नये ग्राहकों द्वारा ही अधिक बढ़ सकती है किन्तु एकाधिकार की स्थिति में मूल्य घटाकर दूसरे के ग्राहकों को आकर्षित करना सम्भव नहीं होता जिसके कारण मांग बढ़ने की कोई सम्भावना नहीं रहती।

प्रश्न ५३—अपूर्ण स्पर्द्धा के क्या कारण हैं? इन कारणों को दृष्टि में रखते हुए बाजार-मूल्य पूर्ण स्पर्द्धा का मूल्य होता है अथवा अपूर्ण स्पर्द्धा का।

उत्तर—अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में कोई विक्रेता अन्य विक्रेताओं के सब ग्राहकों को आकर्षित नहीं कर सकता, अतः जिन कारणवश मूल्य घटने पर भी ग्राहक कम मूल्य वाले विक्रेता से नहीं खरीदते वही अपूर्ण स्पर्द्धा के कारण हैं। ग्राहकों को जब अन्य विक्रेता के कम मूल्य का ज्ञान नहीं होता अथवा जब उन्हें सबसे कम मूल्य पर खरीदने की चिन्ता नहीं होती तभी वह एक विक्रेता से खरीदते रहते हैं। इसलिए प्रथम कारण ग्राहकों का अज्ञान और द्वितीय उनकी निष्क्रियता है।

अज्ञान और निष्क्रियता के अतिरिक्त एक विक्रेता को छोड़कर दूसरे विक्रेता के पास जाने की लागत भी अपूर्ण स्पर्द्धा के लिये उत्तरदायी है। जब ग्राहक पुराने विक्रेता को छोड़कर नये विक्रेता के पास जाता है तो उसे भौतिक हानि अथवा मानसिक कष्ट अथवा दोनों प्रकार का कष्ट हो सकता है।

मानसिक कष्ट ग्राहक की आदत और नये मनुष्य से व्यवहार करने की अनिच्छा के कारण होता है। परन्तु भौतिक हानि मानसिक कष्ट से अधिक महत्त्व की है। भौतिक हानि यातायात की लागत है। जब नवीन विक्रेता पुराने विक्रेता की अपेक्षा दूर पड़ता है तो उससे माल लेने में यातायात व्यय पर अधिक व्यय होता है। इसी कारण ग्राहक के समीप का विक्रेता दूर के विक्रेता से कुछ अधिक मूल्य ले सकता है।

अतः ग्राहकों का अज्ञान, आदत और एक विक्रेता को छोड़ दूसरे विक्रेता से माल लेने की लागत ही अपूर्ण स्पर्द्धा के लिये उत्तरदायी हैं। वास्तविकता में ग्राहक आम तौर से अज्ञानी होते हैं, उन्हें किसी विशेष विक्रेता से व्यवहार करने की आदत पड़ जाती हैं और माल के यातायात में भी व्यय होता ही है। यातायात और सम्वाद साधनों के प्रसार और सुधार से प्रथम और तृतीय कारण कम होते जा रहे हैं। वर्तमान युग में मनुष्यों को भिन्न बाज़ारों के भावों की सूचना पहले से अधिक सुविधापूर्वक मिल जाती है। यातायात लागत भी पहले से कम हो गई है। परन्तु फिर भी कुछ न कुछ अज्ञान और यातायात लागत आज भी वर्तमान है। आज के युग में भी आदत महत्त्वपूर्ण है। अतः संसार में अपूर्ण स्पर्द्धा ही पायी जाती है, इसमें सन्देह नहीं है। इसलिये यह कहा जा सकता है कि वास्तविक बाज़ार-मूल्य अपूर्ण स्पर्द्धा के तत्त्वों द्वारा निर्धारित होता है।

प्रश्न ५४—संक्षेप में स्वतंत्र स्पर्द्धा, पूर्ण स्पर्द्धा और शुद्ध स्पर्द्धा का अन्तर बतलाओ।

उत्तर—आज जिसे हम स्पर्द्धा कहते हैं उसे अधिकतर प्राचीन आंग्ल अर्थशास्त्री स्वतंत्र अथवा खुली स्पर्द्धा के नाम से पुकारते थे। परन्तु हम यह नहीं जानते कि वह स्वतंत्र स्पर्द्धा से ठीक-ठीक क्या समझते थे। उन्हें स्वतंत्र स्पर्द्धा की ठीक-ठीक परिभाषा करने की आवश्यकता कभी ज्ञात नहीं हुई, उन्होंने यह मान लिया कि हम यह जानते हैं कि उनका स्वतंत्र स्पर्द्धा से क्या अर्थ है। फिर भी उनकी रचनाओं से यह मालूम होता है कि स्वतन्त्र स्पर्द्धा से उनका तात्पर्य ऐसी स्थिति से था जिसमें स्पर्द्धा को किसी

प्रकार के वैधानिक, सामाजिक अथवा चारित्रिक बन्धन न हों। विक्रेता एक दूसरे से होड़ कर सकें और कम मूल्य पर माल बेचने को तैयार रहकर दूसरे के ग्राहकों को माल बेच सकें। परन्तु वह स्वतन्त्र स्पर्द्धा की स्थिति में कुछ अन्य बन्धनों की अनुपस्थिति सम्मिलित नहीं करते थे जो कि हम पूर्ण स्पर्द्धा में करते हैं।

हमारे लिए पूर्ण स्पर्द्धा की परिभाषा यह है कि किसी एक विक्रेता की उत्पत्ति के लिए मांग रेखा अनुभूमिक होती है। इसके लिए यह आवश्यक है कि ग्राहकों का विक्रेता से तनिक भी लगाव न हो। वह सबसे सस्ते विक्रेता से खरीदने को स्वतन्त्र होने चाहिएँ। किसी प्रकार की रोक नहीं होनी चाहिए। इस प्रकार वर्तमान मूल्य का पूर्ण ज्ञान भी होना चाहिए। किन्तु प्राचीन आंग्ल अर्थशास्त्रियों के लिए स्वतन्त्र स्पर्द्धा के लिए पड़ी मांग रेखा होना अनिवार्य नहीं है।

प्रोफ़ेसर चेम्बरलेन ने पूर्ण स्पर्द्धा और शुद्ध स्पर्द्धा में भेद किया है। उनके कथनानुसार जब स्पर्द्धा में एकाधिकार का कोई तत्त्व नहीं होता तो स्पर्द्धा शुद्ध होती है। परन्तु इस प्रकार की शुद्ध स्पर्द्धा का पूर्ण स्पर्द्धा होना अनिवार्य नहीं है, यह पूर्ण स्पर्द्धा हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। जब साधन पूर्णतया गतिशील होते हैं और मूल्य, पूर्ति और मांग के बारे में किसी प्रकार का अज्ञान नहीं होता तो स्पर्द्धा पूर्ण होती है। इसके लिए पूर्ण दूरदर्शिता होना आवश्यक है। जब बाज़ार में इस प्रकार की दूरदर्शिता वर्तमान होती है तो प्रोफ़ेसर चेम्बरलेन के कथनानुसार वस्तु का मूल्य औसत उत्पादन लागत के बराबर होता है। परन्तु इसकी अनुपस्थिति में एकाधिकार नहीं होते हुए भी मूल्य औसत उत्पादन लागत से कम अधिक हो सकता है।

एक प्रकार से शुद्ध और पूर्ण स्पर्द्धा का भेद समाप्त किया जा सकता है। हम कहेंगे कि स्पर्द्धा एकाधिकार के तत्त्वों से मुक्त है अर्थात् प्रोफ़ेसर चेम्बरलेन के अर्थों में शुद्ध है, जब कि ग्राहक सबसे सस्ते बाज़ार से खरीदने के लिए स्वतन्त्र है। जब सब जगह इस प्रकार की स्वतन्त्रता होती है तो साधनों का पूर्ण गतिशील होना और पूर्ण दूरदर्शिता होना अनिवार्य है।

परन्तु यदि हम एक उद्योग के सीमित क्षेत्र पर विचार करें तो शुद्ध और पूर्ण स्पर्द्धा का भेद रह सकता है। अतः स्पर्द्धा की शुद्धता आन्तरिक साधनों—विशेषतः ग्राहकों की जहाँ वह चाहें वहाँ से खरीदने की स्वतन्त्रता के कारण होती है। पूर्णता बाह्य कारणों से भी हो सकती है—उत्पादन साधन उद्योग में आने अथवा उद्योग से बाहर जाने के लिए काफ़ी गतिशील होने चाहिएँ।

प्रश्न ५५—अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता है? पूर्ण स्पर्द्धा के मूल्य निर्धारण से इसमें क्या अन्तर है?

उत्तर—अपूर्ण स्पर्द्धा और पूर्ण स्पर्द्धा के मूल्य निर्धारण में आधारभूत कोई अन्तर नहीं है, क्योकि मूल्य तो मूल्य ही है चाहे पूर्ण स्पर्द्धा हो अथवा न हो। परन्तु फिर भी विस्तार में अन्तर है। महत्त्वपूर्ण अन्तर यही है कि पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मांग रेखा अनुभूमिक होती है किन्तु अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में नीचे की ओर ढलवाँ होती है। मूल्य सदैव ही मांग और पूर्ति से निर्धारित होता है। दो स्थितियों में मांग रेखा की शक्ल में भिन्नता के कारण ही मूल्य निर्धारण में अन्तर होता है।

पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मांग रेखा अनुभूमिक होने के कारण प्रत्येक विक्रेता के लिए व्यक्तिगत रूप से मूल्य स्थिर होता है। वह इस स्थिर मूल्य पर ही विक्रय कर सकता है, अधिक मूल्य पर बिक्री बिल्कुल असंभव होती है। स्पर्द्धा की स्थिति में तो विक्रेता अपनी वास्तविक आय अधिकतम करने के लिये केवल बिक्री मात्र में ही परिवर्तन कर सकता है। वास्तविक आय अधिकतम होने के लिये यह आवश्यक है कि सीमान्त उत्पादन लागत और मूल्य बराबर हों। यदि वह इससे अधिक उत्पादन करता है और अधिक बेचता है तो उसे लागत बढ़ने के कारण हानि होती है और यदि वह इससे कम उत्पादन करता है तो वह पूरा-पूरा लाभ नहीं उठाता। अतः स्पर्द्धा की स्थिति में विक्रेता सीमान्त लागत के बराबर ही माल बेचता और उत्पादन करता है।

अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मांग रेखा नीचे की ओर ढलवाँ होती है, जिसका अर्थ यह है कि मूल्य स्थिर नहीं होता। मूल्य में विक्रय-मात्रा के

साथ-साथ परिवर्तन होता रहता है। यदि विक्रय-मात्रा बढ़ा दी जाती है तो मूल्य कम हो जाता है और यदि विक्रय-मात्रा घटा दी जाती है तो मूल्य बढ़ जाता है। उत्पादक उत्पादन-मात्रा और विक्रय-मात्रा आय अधिकतम करने के ध्येय को दृष्टि में रखते हुए ही निश्चित करता है। उसकी आय तभी अधिकतम होती है जब सीमान्त लागत अन्तिम इकाई के बेचने से आय वृद्धि के बराबर होती है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वास्तविक आय तभी अधिकतम होती है जब सीमान्त लागत और सीमान्त आय बराबर होती है। यदि वह इस मात्रा से कम बेचता है तो सीमान्त लागत सीमान्त आय से कम होती है, अतः अधिक मात्रा बेचकर लाभ बढ़ाने की सम्भावना रहती है। यदि वह इससे अधिक बेचता है तो सीमान्त लागत सीमान्त आय से अधिक होती है जिसके कारण उसे हानि होती है। मूल्य और लागत के कुछ आंकड़ों द्वारा इसको और भी स्पष्ट किया जा सकता है।

बिक्री मात्रा इकाइयाँ	मूल्य रुपये	सीमान्त आय रुपये	सीमान्त लागत रुपये	कुल आय रुपये	कुल लागत रुपये	वास्तविक आय रुपये
१	१०	१०	६	१०	६	४
२	९½	९	७	१९	१३	६
३	९	८	८	२७	२१	६
४	८½	७	९	३४	३०	४
५	८	६	१०	४०	४०	०
६	७½	५	११	४५	५१	६

तालिका मूल्य, बिक्री मात्रा और सीमान्त लागत से बनाई गई है, शेष का इन तीनों से हिसाब लगाया गया है। मूल्य और बिक्री मात्रा के गुणनफल से कुल आय मालूम हो जाती है। कुल आय के द्वितीय अंक में से प्रथम अंक घटाने से द्वितीय अंक की सीमान्त आय ज्ञात हो जाती है; कुल लागत और कुल आय का अन्तर वास्तविक आय है।

तालिका के देखने से ज्ञात होता है कि अधिकतम आय तीन इकाई उत्पादन करने से होती है इस मात्रा की सीमान्त लागत और सीमान्त आय भी बराबर होती है। तालिका को देखने से यह भी ज्ञात होता है कि दो इकाई उत्पादन पर भी वास्तविक आय अधिकतम है। हमारी इकाई बड़ी होने के कारण कई उत्पादन मात्राएँ अधिकतम आय की मात्राएँ प्रतीत होती हैं। यदि हम काफी छोटी इकाइयाँ लें तो अधिकतम आय केवल एक ही मात्रा के उत्पादन पर हो सकती है। जब इकाइयाँ छोटी होंगी तो बराबर वास्तविक आय वाली इकाइयाँ एक साथ मिल जायेंगी। इस तालिका में हमने उत्पादन वृद्धि शत प्रतिशत पचास प्रतिशत इत्यादि की है। ठीक फल प्राप्त करने के लिए और सिद्धान्त का उदाहरण देने के लिये इतनी अधिक वृद्धि नहीं लेनी चाहिए, फिर भी तालिका से यह ज्ञात हो ही सकता है कि उत्पादन-मात्रा और मूल्य सीमान्त लागत और सीमान्त आय बराबर होने पर निर्धारित होते हैं।

प्रश्न ५६.—क्या एक ही मूल्य सिद्धान्त पूर्ण स्पर्द्धा, अपूर्ण स्पर्द्धा और एकाधिकार की स्थिति में लागू हो सकता है?

उत्तर—पिछले पृष्ठों में हम देख चुके हैं कि तीनों स्थितियों में मूल्य किस-किस प्रकार निर्धारित होता है। पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य सीमान्त लागत और संस्थिति में औसत लागत के बराबर भी होता है। अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है। एकाधिकार मूल्य अधिकतम एकाधिकार आय द्वारा निर्धारित होता है। परन्तु फिर भी तीनों स्थितियों में मूल्य मांग और पूर्ति द्वारा ही निर्धारित होता है। सभी स्थितियों में पूर्ति रेखा और मांग रेखा अर्थात् सीमान्त लागत रेखा और मांग रेखा द्वारा मूल्य ज्ञात किया जा सकता हैं। मूल्य निर्धारण के लिए इन दो तत्त्वों के अतिरिक्त और किसी तत्त्व की आवश्यकता नहीं होती। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक स्थिति में मूल्य मांग और पूर्ति द्वारा निर्धारित होता है। किन्तु यह कथन सत्य होते हुए भी अस्पष्ट है। यह कथन अधिक स्पष्ट शब्दों में निम्न प्रकार कहा जा सकता है।

हम देख चुके हैं कि अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य सीमान्त आय और सीमान्त लागत द्वारा निर्धारित होता है। यह सिद्धान्त एकाधिकार की स्थिति में भी लागू होता है क्योंकि एकाधिकार की स्थिति में भी माँग रेखा नीचे की ओर ढलवाँ होती है। एकाधिकारी का ध्येय भी आय अधिकतम करने का होता है और उसकी आय अधिकतम तभी होती है जब सीमान्त लागत और सीमान्त आय बराबर होती है। अतः यह कहना उचित ही है कि एकाधिकार की स्थिति में भी मूल्य सीमान्त लागत और सीमान्त आय द्वारा निर्धारित होता है।

पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य सीमान्त लागत के बराबर होता है और माँग रेखा अनुभूमिक होती है। जब मांग रेखा पड़ी होती है तो इसका अर्थ होता है कि मूल्य स्थिर है। अतः यदि हम पिछले प्रश्न में मूल्य को नौ रुपये पर या और किसी मूल्य पर स्थिर रखना चाहें तो यह पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति होगी। इस स्थिति में एक इकाई बिक्री बढ़ाने से सदैव नौ रुपए की आय होगी। अतः सीमान्त आय भी सदैव स्थिर रहेगी और नौ रुपए होगी। अतः जब सीमान्त लागत सीमान्त आय के बराबर होती है तो यह मूल्य के बराबर भी होती है। अतः पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में सीमान्त लागत और मूल्य बराबर होना चाहिए, परन्तु मूल्य और सीमान्त आय बराबर होने के कारण सीमान्त लागत और सीमान्त आय भी बराबर होती है।

अब यह सिद्ध है कि पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में भी मूल्य सीमान्त लागत और सीमान्त आय के बराबर होता है। इसलिए यह सिद्धान्त प्रत्येक स्थिति में लागू होता है?

प्रश्न ५७.—क्या अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में फर्म अनुकूलतम आकार प्राप्त कर सकती है?

उत्तर—जिस फर्म की औसत लागत न्यूनतम सम्भव होती है वह अनुकूलतम आकार वाली फर्म कहलाती है। जैसे-जैसे फर्म की साइज़ बढ़ती है वैसे ही वैसे उसे बड़े पैमाने पर उत्पादन करने के लाभ अधिक होते जाते हैं। अतः क्रमागत उत्पादन वृद्धि नियम अथवा क्रमागत लागत ह्रास नियम लागू होता

है और औसत लागत कम हो जाती है। परन्तु एक सीमा के बाद लागत का घटना रुक जाता है और फिर कुछ समय बाद बढ़ने लगती है, और क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम अथवा क्रमागत लागत वृद्धि नियम लागू होने लगता है। वह बिन्दु जिसके बाद उत्पादन लागत बढ़ने लगती है, अनुकूलतम उत्पादन बिन्दु कहलाता है। इसके बाद उत्पादन-मात्रा बढ़ाने से औसत लागत बढ़नी प्रारम्भ हो जाती है। यह इसलिए होता है कि सब साधन- एक अनुपात में नहीं बढ़ाये जा सकते। प्रत्येक फर्म अनुकूलतम स्थिति प्राप्त करना चाहती है।

परन्तु अनुकूलतम से तो केवल पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में लाभ होता है। पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य स्थिर होने के कारण किसी फर्म के उत्पादन बढ़ाने से उसके लिए मूल्य कम नहीं होता, इस कारणवश फर्म का लाभ तभी अधिकतम होता है जब वह न्यूनतम सम्भव लागत पर उत्पादन करे।

किन्तु अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में मूल्य अस्थिर होता है, वह एक फर्म की उत्पादन-मात्रा में परिवर्तन से भी परिवर्तित हो जाता है। अतः अधिक उत्पादन से मूल्य कम हो जाता है; अनुकूलतम बिन्दु
का अर्थ कम मूल्य होता है। अनुकूलतम से कम उत्पादन कर माल ऊँचे मूल्य पर बेचा जा सकता है। अनुकूलतम से अधिक उत्पादन से तो निश्चित रूप से हानि ही होती है; क्योंकि अधिक माल के साथ-साथ केवल मूल्य ही नहीं गिरता परन्तु लागत भी बढ़ जाती है। परन्तु प्रति इकाई लाभ घटने के साथ-साथ अधिक मात्रा बेचने से कुल लाभ बढ़ भी सकता है। अन्त में लाभ होता है या हानि यह मूल्य घटने की मात्रा और लागत बढ़ने की मात्रा पर निर्भर है।

जब अनुकूलतम से अधिक उत्पादन किया जाता है तो मूल्य गिरता है और लागत बढ़ती है, किन्तु बेचने के लिए अधिक मात्रा होती है। जब अनुकूलतम से कम उत्पादन होता है तो बेचने के लिए कम माल होता है किन्तु मूल्य और लागत अधिक होती है। चित्र की सहायता से यह सिद्ध किया जा सकता है कि जब उद्योग संस्थिति में होता है तो किसी फर्म-विशेष

का लाभ अनुकूलतम से कम मात्रा बेचने पर होता है।

चित्र में अपूर्ण स्पर्द्धा दलवाँ माँग रेखा से प्रदर्शित की जाती है। संस्थिति में माँग रेखा लागत रेखा को छूती है जिसके कारण और अधिक लाभ की गुंजायश नहीं रहती। यदि लाभ होता है तो नई फर्में उत्पादन प्रारम्भ कर देती हैं और यदि हानि होती है तो कुछ फर्में उत्पादन बन्द कर देती हैं।

अतः उद्योग की संस्थिति में अर्थात् जब माँग रेखा लागत रेखा को छूती है तो न लाभ होता है और न हानि। नीचे की ओर दलवाँ माँग रेखा लागत रेखा को न्यूनतम बिन्दु से बायीं ओर ही छू सकती है, यह दायीं ओर नहीं छू सकती। इससे यह सिद्ध होता है कि अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में में जब उद्योग संस्थिति में होता है तो उत्पादन अनुकूलतम से कम होता हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति में जब उद्योग संस्थिति में होता है तो फर्में अनुकूलतम से कम उत्पादन करती हैं।

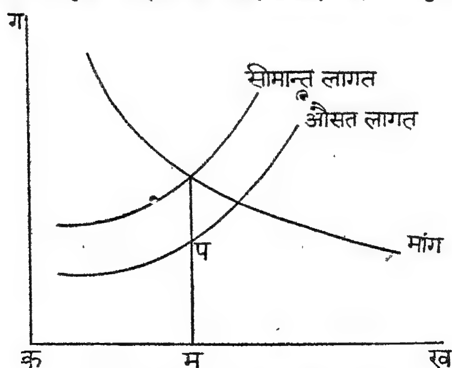
प्रश्न ५८—ग्राहकों में अपूर्ण स्पर्द्धा क्या है? इसका मूल्य पर क्या प्रभाव पड़ता है?

उत्तर--साधारणतया हम देखते हैं कि किसी वस्तु के ग्राहकों में आपस में स्पर्द्धा होती है, अर्थात् यदि एक ग्राहक यह सोचता है कि दूसरा ग्राहक वस्तु खरीद लेगा और उसे वस्तु नहीं मिलेगी तो वह दूसरे ग्राहक से तनिक अधिक मूल्य देने को तैयार हो जाता है। जब किसी वस्तु की केवल एक इकाई अथवा सीमित इकाइयाँ होती हैं तो इस प्रकार की स्पर्द्धा अनिवार्य हो जाती है। इस प्रकार की स्पर्द्धा का सबसे अच्छा उदाहरण नीलाम द्वारा बिक्री है। बाज़ार में अधिकतर वस्तुओं के लिए ग्राहकों में इस प्रकार की स्पर्द्धा होती है। और इसी कारण से विक्रेता इसका लाभ उठाकर सबसे अधिक मूल्य देने वाले ग्राहक को बेचता है। इस ही कारण से पूर्ति बढ़ने से विक्रेता को अपना माल कम मूल्य पर बेचना पड़ता है।

ग्राहकों में स्पर्द्धा इसलिए होती है कि प्रत्येक ग्राहक अपने हितों को सोचता है। परन्तु कभी-कभी विक्रेताओं की तरह ग्राहक भी आपस में मिल

जाते हैं। वह खरीदने के लिए सहयोग करते हैं। ऐसी स्थिति में ग्राहक नीलाम की तरह एक दूसरे के विरोध में बोली नहीं बोलते। वह खरीदने के लिए एक संस्था बना लेते हैं। जब ऐसा हो जाता है तो हम कहते हैं कि ग्राहकों में स्पर्द्धा नहीं है। परन्तु यह नितान्त कठिन है कि ग्राहक इस प्रकार मिल जाएँ कि स्पर्द्धा बिलकुल नहीं रहे। वास्तव में सैद्धान्तिक रूप से स्पर्द्धा के पूर्ण लोप के लिए यह आवश्यक है कि जिन वस्तुओं में स्पर्द्धा होती है उन सब वस्तुओं के सब ग्राहक खरीदने के लिए एक जगह मिल जायें। इसी-लिए सदैव ही स्पर्द्धा कुछ अंशों में रहती ही है। ग्राहकों के इस प्रकार के मिलन की स्थिति को ग्राहकों में अपूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति कहते हैं। कुछ अर्थशास्त्रियों जैसे श्रीमती जोन रोबिनसन ने इसे 'ग्राहकों का एकाधिकार' के विशेष नाम से पुकारा है।

जैसी आशा करनी स्वाभाविक है, इस स्थिति में मूल्य कम होता है, अतः ग्राहकों को लाभ होता है। जिस प्रकार विक्रेताओं के एकाधिकार की स्थिति में मूल्य ऊँचा होता है उसी प्रकार ग्राहकों के एकाधिकार की स्थिति में मूल्य नीचा होता है। हम कह सकते हैं कि इस स्थिति में केवल एक ग्राहक होता है क्योंकि अनेक ग्राहक एक जगह मिल जाते हैं और वह सामूहिक रूप से एक ग्राहक की तरह खरीदते हैं। वस्तु का ग्राहक द्रव्य



प म—ग्राहकों का एकाधिकार मूल्य

का विक्रेता होता है। अतः यहाँ एकाधिकार की स्थिति है जिसमें एकाधिकारी अपना द्रव्य बेचता है। अब हम यहाँ मूल्य निर्धारण के वही सिद्धान्त लागू कर सकते हैं जो हमने वस्तु के एक विक्रेता होने की स्थिति में लागू किया था। अकेला ग्राहक उस समय तक खरीदेगा जब तक कि अन्तिम इकाई के खरीदने की लागत अन्तिम इकाई की उपयोगिता के बराबर न हो जाये क्योंकि वह भी सीमान्त लागत को सीमान्त मूल्य के बराबर करता है। वह वस्तु को उसकी उपयोगिता से कम मूल्य पर प्राप्त करेगा क्योंकि सीमान्त उपयोगिता सीमान्त लागत के बराबर की जाती है, मूल्य के नहीं।

प्रश्न ५६—द्वयाधिकार, सीमिताधिकार, ग्राहकों का एकाधिकार और ग्राहकों के द्वयाधिकार का संक्षिप्त विवरण करो।

उत्तर—द्वयाधिकार की स्थिति में वस्तु के केवल दो विक्रेता होते हैं। यह मान लिया जाता है कि इन दो विक्रेताओं में कुछ अंशों में स्पर्द्धा होती है। यदि एक विक्रेता अमेरिका में है और दूसरा भारतवर्ष में है और उनमें बिल्कुल स्पर्द्धा नहीं है तो द्वयाधिकार की स्थिति नहीं है। यह भी आवश्यक है कि दोनों एक ही वस्तु के विक्रेता हों और उनके ग्राहक ऐसे हों जो दोनों में से किसी से भी खरीद सकें।

द्वयाधिकार की स्थिति में मूल्य निर्धारण किस प्रकार होता है अर्थ-शास्त्र में इस पर काफ़ी वाद-विवाद हो चुका है। इस सम्बन्ध में एजवर्थ और कौरनोट के नाम प्रमुख हैं। उन्होंने द्वयाधिकार की समस्या का हल किया है। कौरनोट का कहना है कि द्वयाधिकार में ऐसा मूल्य निर्धारित होगा जो एकाधिकार के मूल्य से कम किन्तु स्पर्द्धा के मूल्य से अधिक होगा। किन्तु एजवर्थ का कहना है कि मूल्य इन दो सीमाओं के बीच अस्थिर होगा। यह दो अर्थशास्त्री भिन्न स्थितियों को मान कर समस्या का हल करते हैं, इसीलिए उनके हलों में अन्तर है। कौरनोट ने यह माना है कि दोनों द्वयाधिकारी लाभ अधिकतम करने की दृष्टि से अपना उत्पादन और मूल्य निश्चित करते समय दूसरे का उत्पादन स्थिर मानते हैं। किन्तु एजवर्थ ने यह माना है कि प्रत्येक द्वयाधिकारी यह सोचता है कि दूसरे का मूल्य स्थिर रहेगा। अन्य अर्थ-

शास्त्रियों ने यह मत प्रकट किया है कि दोनों स्थितियां ही अवास्तविक हैं।

अन्य बहुत से अर्थशास्त्रियों ने भी द्वयाधिकार की समस्या का हल किया है। हल कठिन है और गणित की सहायता से किया गया है। उनमें से प्रत्येक को कुछ न कुछ स्थिति माननी पड़ी है किन्तु इनमें से कोई स्थिति भी वास्तविक नहीं है। असल में वास्तविक स्थिति का जानना कठिन है। अन्तिम फल के बारे में ही सत्य स्थिति मानी जा सकती है। अन्त में दोनों द्वयाधिकारी स्पर्द्धा की हानि समझ कर एक जगह मिल जायेंगे और एकाधिकार स्थापित कर लेंगे।

सीमिताधिकार की स्थिति में कम विक्रेता होते हैं। जब बहुत अधिक विक्रेताओं में आपस में स्पर्द्धा होती है तो पूर्ण स्पर्द्धा की स्थिति होती है। जब विक्रेता दो से अधिक होते हैं परन्तु बहुत अधिक नहीं होते तो सीमिताधिकार की स्थिति होती है। बहुत से गणितज्ञ अर्थशास्त्रियों ने सीमिताधिकार पर विचार किया है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि जब कम विक्रेता होते हैं तो स्पर्द्धा पर बन्धन होता है। यदि एक विक्रेता मूल्य घटाता है और ग्राहकों को किसी विक्रेता से लगाव नहीं है तो सब उस ही से खरीदना चाहेंगे। परन्तु यह सम्भव है कि वह विक्रेता पूरी मांग को सन्तुष्ट न कर सके। इसी प्रकार जब एक विक्रेता अपना मूल्य थोड़ा बढ़ा देता है तो विक्रेताओं के कम होने के कारण यह सम्भव है कि उसके सब ग्राहक अपनी मांग को दूसरे विक्रेताओं से पूर्ण रूप से सन्तुष्ट न कर सकें। इस कारण सीमिताधिकार की स्थिति में यह आशा की जाती है कि सब विक्रेताओं का मूल्य एक नहीं होगा।

जब ग्राहक किसी विक्रेता से लगाव रखते हैं अर्थात् वह किसी विक्रेता विशेष के सामान को अधिक महत्ता देते हैं तो समस्या और भी जटिल हो जाती है। ऐसी स्थिति में विक्रेता द्वारा थोड़ा अधिक मूल्य लेने पर भी ग्राहक उससे ही खरीदेगा। इससे स्पर्द्धा अपूर्ण हो जाती है। सीमिताधिकार और अपूर्ण स्पर्द्धा के साथ-साथ वर्तमान होने से समस्या नितान्त जटिल हो जाती है। कम विक्रेताओं के होने से इसका प्रभाव मूल्य ऊँचा

करने की ओर होता है। इन कम विक्रेताओं में अपूर्ण स्पर्द्धा के कारण इस प्रवृत्ति को और भी गति मिल जाती है।

वास्तविक दुनिया में बिक्री की अधिकतर स्थितियों में सीमिताधिकार और अपूर्ण स्पर्द्धा साथ-साथ वर्तमान रहती हैं। इस स्थिति में मूल्य किस प्रकार निर्धारित होता है इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रोफेसर चेम्बरलेन की 'एकाधिकार स्पर्द्धा' (Monopolistic Competition) नामक पुस्तक पढ़नी चाहिए।

ग्राहकों के एकाधिकार की स्थिति में वस्तु के ग्राहकों में स्पर्द्धा नहीं होती। जब एक विक्रेता होने के कारण विक्रेताओं में स्पर्द्धा नहीं होती तो हम इसे एकाधिकार की स्थिति कहते हैं। जब एक ग्राहक होने के कारण ग्राहकों में स्पर्द्धा नहीं होती तो इस स्थिति को ग्राहकों का एकाधिकार कहते हैं। ऐसी स्थिति में मूल्य ग्राहकों में स्पर्द्धा की स्थिति से कम होता है। एकाधिकार की स्थिति में मूल्य अधिक होता है क्योंकि विक्रेता ग्राहकों का शोषण करता है। ग्राहकों के एकाधिकार की स्थिति में मूल्य कम होता है क्योंकि ग्राहक विक्रेताओं का शोषण करता है।

ग्राहकों के द्वयाधिकार की स्थिति में केवल दो ग्राहक होते हैं। ऐसी स्थिति में वस्तु का खरीदार द्रव्य का विक्रेता समझा जा सकता है। यदि हम उन्हें द्रव्य के दो विक्रेताओं की तरह समझें तो द्वयाधिकार का सिद्धान्त यहां भी लागू किया जा सकता है। तब द्रव्य का मूल्य (जो वस्तु के मूल्य का उलटा होता है।) स्थिर अथवा अस्थिर होगा। यह इस पर निर्भर करता है कि हम कौरनोट अथवा एजवर्थ किसकी स्थिति मानते हैं।

शब्द-सूची GLOSSARY

अर्थशास्त्र Economics.
अल्प काल Short-period.
अतिरिक्त Extra, Additional, Surplus.
अमितव्ययता(एँ) Diseconomies
अनुभूमिक Horizontal
अपूर्ण Imperfect.
अपूर्ण स्पर्द्धा Imperfect Competition.
अविभाज्य Indivisible.
अनुकूलतम (आदर्श अधिकतम) Optimum.
अपुनरुत्पादन योग्य Non-reproducible.
आकार Size.
आधिपत्य Ownership.
आयात Import.
आवश्यकता Want.
आन्तरिक Internal.
आन्तरिक मितव्ययता Internal Economy.
आय Income, revenue.

आदर्श अधिकतम (अनुकूलतम) Optimum.
उत्पादन Production.
उत्पादक Producer.
उपयोगिता Utility.
उदासीनता सूचक रेखा Indifference Curve.
उद्योग Industry.
उपभोक्ता Consumer.
उपभोक्ता की बचत Consumer's Surplus.
एकाधिकार Monopoly.
औसत Average.
कर Tax.
क्रय Buying.
कमी (न्यूनता) Scarcity.
क्रमागत उपयोगिता ह्रास नियम Law of Diminishing Utility.
क्रमागत उत्पादन ह्रास नियम Law of Diminishing Returns.
क्रमागत उत्पादन-वृद्धि नियम Law of Increasing Returns.

गत्यात्मक (प्रवैगिक) Dynamic.
ग्राहक Buyer.
ग्राहकों का द्वयाधिकार Duopsony.
ग्राहकों का एकाधिकार Monopsony.
जुआ Gambling.
जोखिम (उठाना) Risk (taking)
ढलवाँ (ढालू) Sloping.
दीर्घकाल Long-period.
द्रव्य Money.
द्रव्य-मूल्य Money Value Price.
द्रव्य-लागत Money cost.
द्वयाधिकार Duopoly.
न्यूनता (कमी) Scarcity.
निर्धारण Determination.
निर्यात Export.
नियंत्रण Control.
नियम Law.
नियोजन Planning, Adjustment.
नीलाम Auction.
पुनरुत्पादन-योग्य Reproducible.
पूँजी Capital.
पूँजीवाद Capitalism.
पूर्ति Supply.
पूरक Supplementary.
पूर्ण स्पर्द्धा Perfect Competition.
प्रयत्न Effort.
प्रमुख (प्राथमिक) Prime.
प्रतिनिधि (फर्म) Representative (firm)
प्रवैगिक (गत्यात्मक) Dynamic.
प्रवाह Flow.
प्रमाण Proof.
प्रमाप Standard.
ब्याज Interest.
बचत Saving; Surplus.
बाज़ार Market.
बीमा Insurance.
बीमा-योग्य Insurable.
बेलोच Inelastic.
बेरोज़गारी Unemployment.
भौतिक Material.
भूमि Land.
मज़दूरी Wage.
मांग (की लोच) Demand (elasticity of)
माध्यम Medium.
मात्रा Amount.
मुक्त व्यापार Free Trade.
मुक्त एकाधिकार Open-field Monopoly.

मूल्य Value; Price.

मूल्य-विवेचन Price-discrimination.

यातायात Transport

योग Aggregate.

लगान Rent.

लाभ Profit.

लोच Elasticity.

व्यय Expenditure.

व्यवहार Behaviour.

व्यापार (व्यवसाय) चक्र Trade Cycle.

वक्र Curve.

वस्तुविनिमय Barter.

वास्तविक Positive; Real; Net.

वाह्य मितव्ययताएँ External Economies.

वास्तविक लागत Real Cost.

विवेचनात्मक एकाधिकार Discriminating Monopoly.

विभाजन (शील) Division; (Divisible)

विनिमय (अनुपात) Exchange (Ratio of)

विशेषीकरण Specialization.

विस्तृत बाज़ार Wide Market.

शुद्ध स्पर्द्धा Pure Competition.

शीर्ष Vertical.

शोषण Exploitation.

सहयोग, सहकारिता Cooperation.

संगठन (कर्ता) Organisation, (Organiser).

संघ Combination.

सट्टा Speculation.

संयुक्त (माँग या पूर्ति) Joint (Demand or Supply).

संग्रथित (माँग या पूर्ति) Composite (Demand or Supplv

संस्थिति Equilibrium.

संतुलन Balance.

सम (समान) Equal; Constant.

समीकरण Equation.

साधन Factors; Resources.

साहस (साहसी) Enterprise (Entrepreneur).

सामान Goods

सामान्य Normal.

साम्य Equality.

सीमान्त Marginal.

सीमिताधिकार Oligopoly.

सेवा (एँ) Services.

सौदा-रेखा Contract curve.
स्थिर Constant; Static; Steady.
स्थैतिक Static.
स्थानीय Local
स्पर्द्धा Competition.
स्टाक Stock.
स्वतंत्र (स्पर्द्धा) Free Competition.
श्रम Labour.
श्रम-विभाजन Division of Labour.
हानि Loss.
ह्रास Diminution; Decrease